समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४९ अंक : ३-४ फाल्गुन-चैत्र-वैशाख वि.सं.- २०७८ मार्च-अप्रेल,२०२२ (संयुक्तांक) सहयोग राशि-पचास रुपये पृष्ठ-८८ **RNI 43602/7 ISSN No.2581-981X**

महिला दिवस

समिति में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस उत्साह से मनाया गया। पुस्तकालय में आने वाली बच्चियों के साथ एक संवाद भी रखा गया। इस अवसर पर एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म भी दिखायी गयी।

जयपुर के एक गांव बगरू खुर्द में भी समिति द्वारा अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। श्रीमती प्रेम गुप्ता एवं बटीना मलिक ने इस कार्यक्रम में शिरकत की। समिति के नवसाक्षर साहित्य के प्रकाशनों की एक प्रदर्शनी लगायी गयी।❑

रमेश थानवी स्मृति पोथी घर

समिति द्वारा इरादा स्वयं सेवी संस्था, जयपुर के सहयोग २० मार्च, २०२२ रविवार को मानसिक बौद्धिक द्विव्यांग गृह, जामड़ोली, जयपुर में श्री रमेश थानवी स्मृति पोथी घर का शुभारंभ किया गया। पोथी घर का उद्घाटन मुख्यमंत्री के निजी सचिव श्री देवाराम सैनी ने किया। इस पोथी घर से देवनारायण योजना के अंतर्गत स्थापित बालिका छात्रावास की लगभग २०० लड़कियां लाभान्वित होंगी। ये छात्राएं विभिन्न स्नातक पाठ्यक्रमों में अध्ययन कर रही हैं।

समिति द्वारा यह पोथी घर नाना नानी न्यास, जयपुर के आर्थिक सहयोग से संचालित होगा।❑

विद्यां चाविद्यां च
यस् तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं
तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

❑

(ईशावास्योपनिषद्)

अर्थ–विद्या और अविद्या, इन दोनों के साथ
जो उस आत्मतत्त्व को जानते हैं
वे उस आत्मतत्त्व के सहारे
अविद्या से मृत्यु को पार कर
विद्या से अमृत को पाते हैं। ❑

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : ३-४ फाल्गुन-चैत्र-वैशाख वि.सं. २०७८ मार्च-अप्रेल, २०२२ (संयुक्तांक)

क्र म

अपील

समिति के सभी सदस्यों, दूर-दराज के मित्रों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में फैले सुधी पाठकों से निवेदन है कि समिति के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए अपनी सहयोग राशि पूरी उदारता के साथ भिजवाने का अनुग्रह करें। आज किसी भी पत्रिका का प्रकाशन बहुत मुश्किल काम है मगर समिति अपने पूर्ण सेवा भाव के साथ अनौपचारिका को पिछले ४९ वर्षों से निरंतर निकाल रही है। सभी प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि अभी हाल ही में कादम्बिनी भी बंद हो गई है जो हिन्दुस्तान टाइम्स का प्रकाशन था। ऐसी स्थिति में हम कटिबद्ध हैं कि अनौपचारिका निरंतर निकलती रहे। आपका सहयोग सादर अपेक्षित है।

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext.Jhalana Jaipur

I.F.S.C.Code : BARB0EXTNEH
(fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct,No. 9815010002077

आवरण चित्र : कृतिका जोशी

संपादकीय सहयोग : राजेन्द्र बोड़ा, ओमप्रकाश टाक, हिमांशु व्यास

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक : **स्व. रमेश थनवी**
कार्यकारी संपादक : **प्रेम गुप्ता**
प्रबंध संपादक : **दिलीप शर्मा**

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

सद्भावना सहयोग :
व्यक्तिगत ५००/- रुपये वार्षिक
संस्थागत १०००/- रुपये वार्षिक
मैत्री समुदाय ५०००/- रुपये
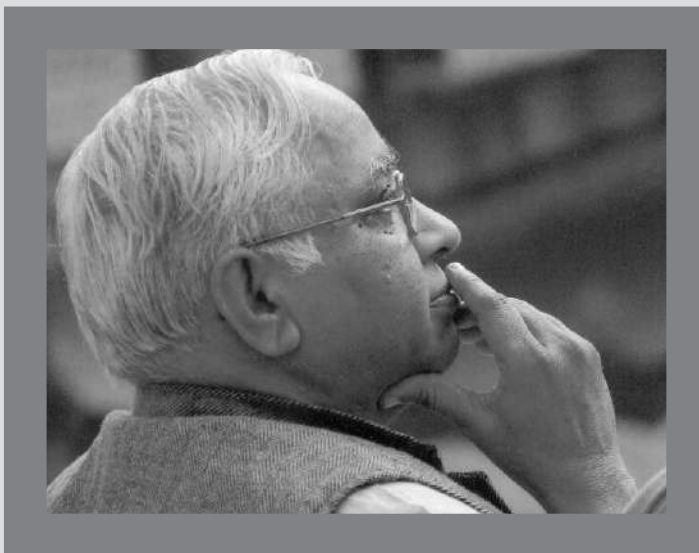
नित्य नवोन्मेषी

❑

रमेश भाईजी को शिक्षा क्षेत्र का चिन्तक कहूं या गांधी-सर्वोदय क्षेत्र का आत्मीय सहचर। उन्हें संवेदनशील लेखक कहूं या साहित्य और कला का सच्चा पारखी। वस्तुत: उनका जीवन और कृतित्व इन सभी क्षेत्रों को आत्मसात किये हुए था। आज उनके अवसान का दु:ख इसलिए इतना ज्यादा सघन और त्रासद महसूस होता है क्योंकि इस युग में उनका जैसा इंसान खोजना अब असंभव ही है। रमेश जी के साथ हमारा दो पीढ़ियों पुराना संबंध था। मेरी मां छगन बहन और बाउजी त्रिलोकचंद गोलेच्छा जिन्होंने गांधी-प्रणीत रचनात्मक कार्यों के लिए अपना जीवन समर्पित किया, उनको भी रमेश जी प्रिय थे और मुझे भी उनसे एक अग्रज भाई का प्रेम मिला। उनके अवसान से हमने एक पारिवारिक मित्र और बंधु तो खोया ही है, साथ में शिक्षा को रसमय बनाने का स्वप्न देखने वाला और गांधी-विचार को जड़मूल से समझने वाला एक सर्वोदय-हितैषी भी खो दिया है। उनकी अनुपस्थिति का दु:ख हमें लंबे समय तक महसूस होगा और उस रिक्तता को न भर पाने का मलाल भी हमेशा बना रहेगा।

मेरा सौभाग्य रहा है कि पिछले अनेक बरसों से मैं रमेशजी को निकटता से देखने का अवसर पाती रही हूं। समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने जिस तरह अपने

जीवन भर के चिन्तन को व्यावहारिक धरातल पर उतारकर दिखाया, उसकी भी मैं साक्षी रही हूं। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति का कार्यक्षेत्र केवल प्रकाशन और सम्मेलन तक ही सीमित नहीं है, उसमें आनंदशाला, स्वास्थ्यशाला और चित् छाया जैसे नवाचारों के लिए भी जगह है। आज वही इंसान सुखी है जिसके पास जीवन का आनंद है और यह आनंद स्वास्थ्य को संभालने से और चित्त को प्रकृति में स्थिर करके ही पाया जा सकता है। रमेशजी के अंतिम दिनों के कार्य इसी सत्य की ओर इशारा करते हैं।

मैंने रमेश जी को हमेशा नयी तालीम के अप्रतिम व्याख्याकार के रूप में पाया। नई तालीम केवल अक्षरों और अंकों के ज्ञान तक सीमित नहीं है, वह मनुष्य को स्वावलंबी, नवोन्मेषी, रचनात्मक और सेवाभावी बनाने की प्रक्रिया भी है। रमेश भाई ने जीवन भर इसी तालीम को जीया और इसी को समाज में प्रसारित-प्रचारित भी किया। रमेश भाई के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी सर्वाधिक प्रेरक और श्रद्धावान व्यक्तित्व थे। वे गांधी विचारों की गलत व्याख्या से व्यथित हो जाते थे। उनके जीवन और कार्यों में एक आस्तिक भाव हमेशा झलकता था लेकिन उनकी आस्तिकता किसी एक धर्म या एक ईश्वर तक सीमित नहीं थी। उसमें सभी धर्मों और सभी संत-महापुरुषों के लिए जगह थी। अंतिम समय में रमेश भाई देश और समाज में तेजी से खत्म होते जा रहे सौहार्द-संबंधों और बढ़ती हिंसा और असहिष्णुता के कारण विचलित व चिन्तित रहते थे और संभवत: इसीलिए उन्होंने मिशन ताना-बाना कार्यक्रम की रचना की थी और इसके माध्यम से सद्भाव एवं समन्वय के मूल्यों को सर्वत्र पहुंचाने के लिए हार्दिक प्रयास भी किये थे।

रमेश भाई का जीवन एक खुली किताब की तरह था। उस किताब में निष्ठा, कर्मठता, सामाजिक-दायित्व, ईमानदारी और निर्मलता कोरे शब्द मात्र नहीं थे, उनका गहरा मानवीय अर्थ था और जो उनके विचारों और कार्यों में ध्वनित होता था। रमेशजी का जीवन कथनी-करनी में एकता को दर्शाने वाला जीवन था, शिक्षा और साहित्य से गहरा अनुराग रखने वाला जीवन था, प्रेम, सद्भाव और संवेदना से ओत-प्रोत जीवन था। उस भरे-पूरे और नित्य नवोन्मेषी जीवन को सलाम करने को जी चाहता है। एक सर्वोदय कार्यकर्ता को सदा ऐसा ही जीवन प्रिय रहता है जहां कोई द्वैत रहे ही नहीं, सर्वत्र अद्वैत ही अद्वैत प्रतिष्ठित हो। रमेश जी हमारे बीच अद्वैत का आदर्श बनकर हमेशा जीवित रहेंगे। ❑ **आशा बोथरा**

संगच्छध्वं संवदध्वं
सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे
सञ्जानाना उपासते।।

रमेश थानवी : एक आजीवन पाठशाला

❑

मैंने जितना थानवी जी को समझा-जाना, उसे शब्दों में पिरोया जाना मुश्किल है। थानवी जी प्रखर चिंतक थे। वे अनंत जिज्ञासु थे। तेजस्वी समाज सेवक थे। श्री रमेश थानवी स्वैच्छिक सेवा भाव की अनूठी मिसाल थे। वे एक ऐसे सखा थे, जो सबके प्रिय थे। उनका जीवन सरल, विरल था। सादगी से भरा था। वे सदा मुस्कुराते एवं जीवंत रहते। सुर और संगीत उन्हें प्रिय थे। वे प्रतिदिन सुबह संगीत सुना करते थे।

श्रद्धेय रमेश थानवी जोधपुर जिले के फलोदी गांव में जन्मे थे। वे जोधपुर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में स्नातक थे। अपनी जीवन यात्रा के प्रारंभिक दिनों में वे भारतीय ज्ञानपीठ से जुड़ गये थे। लगभग २ वर्ष तक 'प्रतिपक्ष' के साथ जुड़े रहने के बाद वर्ष १९७६ में राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के तत्वावधान में उन्होंने देश के पहले राज्य संदर्भ केंद्र की स्थापना की और २० वर्ष तक इसके संस्थापक निदेशक रहे।

राज्य संदर्भ के निदेशक रहते हुए रमेश जी प्रौढ़ शिक्षा का पहला पाठ पढ़ने वियतनाम गये। पत्रकारिता के मार्ग से होते हुए उन्होंने अनौपचारिक शिक्षाकर्मी को न केवल अपनाया बल्कि आजीवन उसी में रमे रहे। साक्षरता के काम को सही दिशा मिल सके, वे इसकी जड़ों को जान सकें, समझ सकें, उन्होंने इंग्लैंड, वियतनाम, क्यूबा, थाईलैंड, बैंकॉक, जर्मनी, सिंगापुर, इंडोनेशिया, फिलीपीन्स, हांगकांग, हॉलैंड और पेरिस समेत कई देशों की यात्राएं कीं।

जीवन्तता और जीवटता के धनी ऐसे थे कि १२ मार्च, २०१८ की रात जलकर कोयला हुए समिति के सभागार को एक नवोन्मेष रूप दिया। इसकी रंगीन दीवारें और आठ भिन्न-भिन्न भाषाओं में लिखे 'सबद' सबको आमंत्रित करते हैं। इसके लिए उन्होंने घर-घर जाकर चंदे के रूप में बड़ी राशि एकत्रित की।

वे जीवन की पूरी यात्रा में नवाचार करते रहे। थानवी जी ने अपने जीवन के ५० बरस ही नहीं, बल्कि अपना पूरा जीवन ही समिति को समर्पित कर दिया । वे रात-दिन साक्षरता के काम में जुटे रहे । स्वास्थ्य को अनदेखा करते रहे। उन्होंने न केवल शिक्षा की अलख जगायी, बल्कि साक्षरता अभियान को एक व्यापक आंदोलन का रूप भी दिया।

मैंने उनके साथ दो दशक से भी ज्यादा समय तक काम किया। उनके साथ बिताया गया हर पल अनमोल था, अमूल्य था और अनूठा था। वैसे तो स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम की शिक्षा मैंने अध्यापकों से पायी थी। किंतु जीवन का असली पाठ मैंने उनसे सीखा। उन्होंने मेरे अंदर के लेखक को जगाया था, उसे पनपने का स्थान दिया। वे हर रोज नूतन स्वाध्याय का पाठ करने एवं उसका चिंतन करने की बात कहते।

वे सदा काम को खेती के रूप में देखते थे। उसके बीज बोने से लेकर फसल उगने तक वे उसे सींचते रहते, पोषित करते रहते। लोगों के बीच प्रेम और करुणा के बीजों के रूप में फैला देते, इन सब अर्थों में एक तरह से हम सब की **मां** बन गये थे।

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति को वे **शांति निकेतन** जैसा देखना चाहते थे और इस सपने को उन्होंने यहां पेड़ों की छांव में बालकों की आनंद शाला चलाकर पूरा किया। इतना ही नहीं, आरोग्य की साधना करते हुए वत्सल वसुधा कुदरती एवं जैविक खेती का और सात्विक, शाकाहारी एवं निरोग जीवन जीने का सतत शिक्षा केंद्र राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में खोला। समिति में एक बड़े पुस्तकालय में सभी साहित्य, महाकाव्य, वेद, उपनिषद की पुस्तकों का भी चयन किया। यहां पोथी घर खोला। वे घर-घर किताबें पहुंचाते रहे।

बापू के अध्यात्म ने थानवी जी के जीवन दर्शन को बहुत प्रभावित किया। जीवन का दर्शनशास्त्र उनके संपूर्ण जीवन में समाया हुआ था। **वसुधैव कुटुंबकम्** का भाव सतत उनके जीवन का अभिन्न अंग था। बापू की आश्रम भजनावली, सर्व- धर्म प्रार्थना, भगवद् गीता, मारिया मोंटेसरी, गिजुभाई, तोत्तोचान उनकी विशेष पसंदीदा पुस्तकें रही।

हम कौन थे ? क्या हो गये ? हम और क्या होंगे अभी ? यह उनकी विशेष चिंता के विषय थे। उनका कहना था कि हमारा देश तो महामानवों का सागर था। न कोई हिंदू था न मुसलमान। 'मां विद्वविषावहे' हमारे मूल मंत्र थे।

आध्यात्मिक जगत् भी उनसे अनछुआ नहीं था। गोगुंदा जी, सद्गुरु, महाप्रज्ञजी, संवित सोमगिरीजी जैसे आध्यात्मिक गुरु से उनका आत्मीय रिश्ता था।

इस अंक को निकालते समय न जाने मेरे मन में कितनी यादें उमड़-घुमड़ रही थीं। कितने ही संपादकियों का स्मरण आया। उन सबको यहां संजोना, संवारने और पाठकों तक पहुंचाने के लिए अनौपचारिका के ये पृष्ठ भी कम पड़ रहे हैं।

मैं इस अंक के प्रकाशन में सहयोग के लिए सभी लेखकों, कवि, कलाकारों की शुक्रगुजार हूं। हृदय से आभार प्रकट करती हूं। इस अंक में आप थानवी जी के समग्र व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उनकी स्मृतियों में लिखे शिक्षा मनीषियों के आलेख पढ़ेंगे। उनके चले जाने से शिक्षा क्षेत्र में बड़ी क्षति हुई है। सही कहते हैं लोग कि **ना जाने किस मिट्टी के बने थे** थानवी जी।❑ **प्रेम गुप्ता**

❑
डॉ. लक्ष्मीधर मिश्रा

डॉक्टर लक्ष्मीधर मिश्रा भारतीय प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्त हैं। इन्होंने भारत सरकार के केंद्रीय श्रम, रोजगार और संसदीय कार्य सचिव के रूप में कार्य किया है। डॉक्टर लक्ष्मीधर मिश्रा रमेश जी को अपने सबसे प्रिय और प्यारे भाई सरीखे मानते हैं।
परिस्थितियां कितनी भी विपरीत रही हो थानवीजी ने जीवन में उत्साह और आनंद कभी नहीं खोया।
प्रस्तुत आलेख में अनौपचारिका को एक चिंतन स्मरण, आत्म निरीक्षण और आत्मीय भावों को व्यक्त करने का, रचनात्मक लेखन का सर्वोत्तम रूप मानते हैं। जो असहिष्णुता हिंसा और असंतोष के विरुद्ध चेतना जागृत करती है।
डॉ. लक्ष्मीधर मिश्रा का प्रस्तुत आलेख रमेश जी के संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालता है। जिसका अनुवाद वरिष्ठ पत्रकार श्री राजेन्द्र बोड़ा ने किया है। ❑ सं.

मेरे प्यारे रमेशभाई

❑

जब किसी का दिल और दिमाग उदास विचारों से भरे होते हैं, तब वास्तविक भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में शब्द कमजोर पड़ जाते हैं।

ठीक यही मेरी स्थिति थी जब मैंने रमेश भाई के स्वास्थ्य और हालचाल के बारे में जानने के लिए पिछले १२ मार्च (बापू के दांडी मार्च की ९२ वीं वर्षगांठ) पर जयपुर में उनके आवास पर फोन किया। कुछ माह पूर्व ही रमेश भाई ने राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा नारायणभाई देसाई के मूल गुजराती में १२ खंडों में लिखे अमूल्य रत्नों के कराये गये हिन्दी अनुवाद तथा प्रकाशन 'सबके गांधी' मुझे बड़े प्रेम से भेजे थे। मैं उन्हें बताना चाहता था कि इस प्रकाशन ने मुझे कितना प्रेरित किया है और मेरा उत्साह बढ़ाया है।

मुझे उनकी बेटी सुश्री गुनगुन ने बताया कि वे नहीं रहे। यह एक वज्राघात की तरह था। कुछ क्षणों के लिए मैं पूरी तरह स्तब्ध और हतप्रभ रह गया। रमेशभाई के निधन की यह सूचना इसलिए और भी दुखद और बेचैन करने वाली थी कि वे एक माह पहले ही नश्वर शरीर त्याग चुके थे किन्तु १२ मार्च की दोपहर तक मुझे इस महान त्रासदी का कोई आभास नहीं था।

मैं अपने आप को और अधिक दोषी महसूस कर रहा था क्योंकि जनवरी' २२ के अंत तक मैं फोन और ईमेल दोनों के माध्यम से उनके संपर्क में था। यह मेरी चूक थी कि गफलत से मैंने उनसे फरवरी में बात नहीं की थी। मैंने सोचा कि वे ठीक हो गये हैं, उन्हें कोविड १९ का टीका लग गया है तथा वे अब सुरक्षित और स्वस्थ हैं और सबसे बुरा समय गुजर गया है। दुर्भाग्य से मैं गलत साबित हुआ।

मैं रमेशभाई को नजदीक से तब से जानता था जब मैं ३०.०९.८८ को डीजी, एनएलएमए और जेएस, एमएचआरडी के रूप में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के कार्यान्वयन की गति और प्रगति की गहन समीक्षा के लिए जयपुर आया था। यह मिशन तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने ०५.०५.८८ को शुरू किया था। वह एक यादगार यात्रा थी। तब रमेशभाई राज्य संदर्भ केंद्र के निदेशक थे और चतर सिंह मेहता राज्य के प्रौढ़ शिक्षा निदेशक थे।

मुझे याद आता है कि राज्य संदर्भ केंद्र की अवधारणा अनिल बोर्डिया की थी

और उन्हीं ने उसे आगे बढ़ाया था जब वे शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय (शिक्षा विभाग) के संयुक्त सचिव (१९७५-८०) थे। स्थापना के साथ ही राज्य संदर्भ केंद्रों को प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए शैक्षणिक और तकनीकी संसाधन प्रदान करने के लिए अधिकृत किया गया था। वे अपने समूचे सिविल सेवा करियर में अपने दृष्टिकोण, रणनीति और कार्यप्रणाली में गैर परंपरागत और गैर रूढ़िवादी रहे। उन्होंने राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा समिति, जयपुर, बंगाल सोशल सर्विस लीग, कलकत्ता, आंध्र महिला सभा, हैदराबाद, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, भारतीय शिक्षा संस्थान, पुणे, कर्नाटक प्रौढ़ शिक्षा परिषद, मैसूर, दीपायतन, पटना तथा साक्षरता हाउस, लखनऊ जैसे देश के कुछ बेहतरीन गैर सरकारी संगठनों की पहचान की थी। उन्होंने राज्य संदर्भ केंद्रों के लिए ऐसे व्यक्तियों को चुना जो प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को सर्वोत्तम कल्पना, रचनात्मकता और अकादमिक उत्कृष्टता से क्रियान्वित कर सकें।

रमेशभाई ने लगभग एक दशक तक राज्य संदर्भ केंद्र, जयपुर के निदेशक पद को सुशोभित किया। इस संस्थान को वास्तव में महान बनाने और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में उसके योगदान को मौलिक और यादगार बनाने के लिए उन्होंने अपना जो सर्वश्रेष्ठ समय, ऊर्जा और संसाधन दिये, वे हमेशा याद रहेंगे।

नव नामांकित प्रौढ़ शिक्षार्थियों के लिए बुनियादी साक्षरता प्राइमर डिजाइन करना हो, या नव-साक्षरों के लिए साक्षरता और सतत शिक्षा सामग्री या प्रशिक्षण पाठ्यक्रम बनाना हो अथवा डिजाइन करना हो, या फिर जन शिक्षण निलयम (तत्कालीन साक्षरता और सतत शिक्षा के केंद्र) के प्रभारी मास्टर प्रशिक्षकों, प्रौढ़ शिक्षा प्रशिक्षकों और प्रेरकों के प्रशिक्षण का संचालन करना हो, सभी में उनके नेतृत्व में जयपुर का

हिम्मत शाह

राज्य संदर्भ केंद्र उत्कृष्टता के चरम पर रहा।

जब १९७३ में अपनाये गये पुराने बुनियादी साक्षरता प्राइमर 'राम राम सा', की समीक्षा की गयी, तब जाकर उसमें १९८८ में संशोधन हुआ, उस पर राज्य संदर्भ केंद्र के निदेशक के रूप में रमेश भाई की समृद्ध कल्पना, धारणा और अंतर्दृष्टि की पूरी तरह छाप रही।

यह धारणा उन शब्दों से स्पष्ट होती है जो उनके द्वारा तैयार किये गये प्राइमर की प्रस्तावना में आते हैं और जिन्हें मैं यहां उद्धृत कर रहा हूं: बोलचाल वाली हिन्दी में लिखी 'राम राम सा' एक किताब है। यह एक इतिवृत्त (क्रॉनिकल) भी है। यह अक्षर सीखने में मददगार है। इसका उद्देश्य है कि जो पढ़ा जाता है उस पर चिंतन भी हो। यह पुस्तक विचार और विश्लेषण के लिए है। पाठ (पुराने प्राइमर के) बदल गये हैं। शब्द बदल गये हैं। यह बदलाव राजस्थान में आये परिवर्तनों के संदर्भ में जरूरी थे। यह तो अविवेकपूर्ण बात होगी कि यदि बाहर सूखा और अकाल पड़ा हो और हमारी किताब बीज, बाजरा और उन्नत कृषि की बात करे। तब तो वह आमजन की किताब नहीं होगी।

बापू की तरह रमेशभाई मौखिक और लिखित दोनों प्रकार की संचार की कलाओं में बेमिसाल थे। संशोधित प्राइमर के माध्यम से, उन्होंने एक ऐसा संदेश देने की कोशिश की जो सरल, प्रासंगिक, उपयुक्त, जीवंत और आकर्षक हो। यह प्राइमर हमें अपने व्यक्तिगत और सामूहिक चेतना के मेहराब में प्रवेश कराती है। यह एक असंवेदनशील मन के बंद दरवाजों को झटका दे कर खोलती है। यह अंततः हमें एक अलग दुनिया में ले जाती है – सादगी, निर्दोष, जमीनी स्तर के यथार्थवाद, प्राकृतिक आनंद और दुख, हंसी और आंसुओं की दुनिया में।

बोलचाल वाली हिंदी के अलावा, रमेशभाई मारवाड़ी, हाड़ौती आदि भाषाओं/बोलियों के भी एक नंबर के माहिर थे। कोटा, बूंदी और झालावाड़ के लोगों के लिए राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा बनायी गयी 'हाड़ौती प्रवेशिका' राजस्थान के १७ प्रतिष्ठित लेखकों के योगदान का परिणाम थी जिस पर रमेशभाई के शैक्षणिक नेतृत्व की मुहर थी।

इसी तरह, पृथ्वी, वायु, जल, ऊर्जा और आकाश को विकास के साथ जोड़ने के लिए मारवाड़ी प्राइमर राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण को बढ़ावा देने, संरक्षित करने और बनाये रखने के लिए एक ताज़ा, कल्पनाशील और आकर्षक शिक्षण सामग्री थी जो अधिकतर शुष्क और बंजर भूभाग के मारवाड़ी बोलने वालों के लिए थी।

लंबे समय तक सूखे के कारण लाखों लोगों और पशुपालकों (मानव आबादी के बराबर ही पालतू पशुओं की आबादी) के जीवन को प्रभावित करने वाले राजस्थान के गहरे संकट और कष्ट की स्थिति की स्पष्ट कल्पना करने में वे सक्षम थे। उन्होंने मूल प्राइमर और अनेक पूरक पाठकों को प्रोत्साहित

किया कि कैसे (अ) सूखा प्रकृति के क्रोध का प्रकटीकरण है और (बी) प्रकृति के संरक्षण और प्राकृतिक पर्यावरण के निर्माण और रखरखाव से इसे रोका जा सकता है और प्रकृति के प्रकोप को नियंत्रित किया जा सकता है।

राज्य संदर्भ केंद्र के निदेशक के रूप में मिले अपने काम को उन्होंने एक मिशन के रूप में लिया और साथ ही साथ 'अनौपचारिका' के संपादक के रूप में भगवती लाल व्यास, सत्यनारायण गोयनका, पंकज, प्रेम गुप्ता, प्रमोद, श्रीमती प्रभा पारीख, वाज़दा खान, अभिजीत पाठक, नारायण दत्त, कृष्ण बिहारी मिश्रा, शिशुपाल, अदम गोंडवी, अरविंद ओझा, भगवती प्रसाद गौतम, सुश्री अनुपमा तिवाड़ी, केशव सरन, शिरीष खरे, डॉ. शीला शर्मा, अनुपम मिश्रा, श्री हूबनाथ आदि जैसे कद और काठी के रचनात्मक लेखकों, विचारकों, कलाकारों, कवियों, उपन्यासकारों, साहित्यिक आलोचकों, स्तंभकारों की एक आकाशगंगा की भागीदारी को इस पत्रिका के लिए जुटाया। उन्होंने अपनी अंतिम सांस तक 'अनौपचारिका' का प्रशंसनीय कौशल के साथ संपादन किया। राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति अपनी शुरुआत से ही यह पत्रिका प्रकाशित करती आ रही है।

'अनौपचारिका' का अर्थ है 'गैर-औपचारिक विचारों का वाहक। ऐसी पत्रिका जो रचनात्मक शक्तियों और ऊर्जा का संगम हो और आलोचनात्मक चेतना के मंथन पर आधारित हो, का संपादन करना एक असाधारण संपादकीय कौशल की मांग करता है। एक ऐसी पत्रिका जो असामान्य रूप से अपरंपरागत व्यक्तियों के लिए अपरंपरागत विचारों को प्रस्तुत कर सके। रमेशभाई पूरी तरह से इसी श्रेणी के संपादक थे और इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए विशिष्ट रूप से योग्य थे।

मैं तीन दशकों से अधिक समय से 'अनौपचारिका' का नियमित ग्राहक रहा हूं। जिस प्रकार भुवनेश्वर के मेरे मित्र सुधीर पटनायक की अपने दायरे में केंद्रित 'समदृष्टि' पत्रिका जो प्रबुद्ध पाठकों द्वारा पोषित है, का मैं इंतज़ार करता हूं, उसी प्रकार मैं हर माह की शुरुआत में 'अनौपचारिका' के आने का बेसब्री से इंतजार करता हूं। इसका प्रत्येक अंक मुझे सचमुच एक अलग दुनिया में ले जाता है, जो महत्वपूर्ण चेतना और शुद्ध आनंद, शांति, समता और आध्यात्मिक सद्भाव की दुनिया है जहां असहमति की सहिष्णुता है और जिसमें द्वेष, घृणा, क्रूरता और हिंसा का कोई भाव नहीं है। जहां शब्द और कर्म से एक तर्कसंगत, धर्मनिरपेक्ष, उदार, और वैज्ञानिक मनोवृत्ति वाला स्वभाव विकसित किया जाता है।

'अनौपचारिका' में उत्कृष्ट दृश्यता, बेहतरीन ग्राफिक चित्रण, कल्पनाशील और जीवंत कवर डिजाइन, चित्रों तथा कार्टूनों की शानदार गुणवत्ता समाहित है जिससे प्रतिष्ठित कार्टूनिस्ट आर के लक्ष्मण भी ईर्ष्या करते।

'मगर हम थक भी गए', 'अलविदा मुकुंद भाई', 'मिशन ताना-बाना की शुरुआत', 'सर्वोच्च कौन: लोग या

सरकार?', 'आकांक्षी बच्चे और ऑनलाइन कक्षाएं', 'चिरयुवा सतत शिक्षा', 'मौलश्री का गीत' जैसे कुछ साहित्यिक आलेख विचारों, भावनाओं और आत्माओं की गहनता से भरे हुए हैं। ये आलेख एक संवेदनशील मन के उच्च विचारों का भी पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। वे पूरी तरह से उस भावना पर भी खरे उतरते हैं जैसा विलियम वर्ड्सवर्थ ने 'गीतात्मक गाथागीत' (लिरिकल बलाड्स) में कहा था कि कविता शक्तिशाली भावनाओं का सहज अतिप्रवाह है; इसकी उत्पत्ति शांत भाव की आत्मलीन अवस्था में होती है। चिंतन, स्मरण, विश्लेषण, आत्मनिरीक्षण और शांत मन में आत्मलीन भावों को व्यक्त करना रचनात्मक लेखन का सर्वोत्तम रूप है, और यही सब कुछ 'अनौपचारिका'है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि इस पत्रिका का शक्तिशाली संपादकीय शब्दों के मिलन, विचारों के सहज प्रवाह और निष्कर्ष के रूप में बेजोड़ है, जो एक संकटग्रस्त मानवता को आशा, विश्वास और आश्वासन देता है तथा जो नासमझ संघर्ष, तनाव, असंतोष, असहिष्णुता, घृणा, क्रूरता, हिंसा और सम्पूर्ण विलुप्ति के विरुद्ध चेतना जाग्रत करता है।

संस्कृत में एक कहावत है जिसे मैं आसन्न आपदा की पूर्वसूचना के रूप में नहीं बल्कि विशुद्ध रूप से एक चेतावनी के रूप में उद्धृत करने के लिए प्रेरित हुआ हूं, पृथ्वी का स्वामी, मानधाता, जो एक आभूषण की तरह अपने युग को सुशोभित करता था चला गया, भगवान श्री रामचंद्र, जिन्होंने लंका तक पहुंचने और दस सिर वाले राक्षस-रावण को नष्ट करने के लिए समुद्र पार करने ले लिए पुल बनाया था, वह भी चला गया, वैसे ही पांडव पुत्र युधिष्ठिर भी अपने चार भाइयों के साथ चला गया। मगर धरती जहां थी वहीं रही, और उन में से किसी के साथ नहीं गयी। पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में अब जो लाख टके का सवाल है कि क्या अब भी हम इतने आश्वस्त हैं कि पृथ्वी हमेशा हमारे साथ रहेगी? इस का उत्तर है शायद नहीं।

'अनौपचारिका' जैसी बहुचर्चित और खूब प्रसारित पत्रिका के प्रतिभाशाली और व्यावहारिक संपादक होने के अलावा, रमेशभाई एक उत्कृष्ट कवि, लघु कथाकार, अनुवादक और टिप्पणीकार/स्तंभकार भी थे। उनकी लघुकथा 'उस्मान भाई' उल्लेखनीय संवेदनशीलता के रंग में रंगी हुई है। 'मौलश्री के गीत' जैसे गद्य की रचना करते हुए उन्होंने इतनी लगन और संवेदनशीलता के साथ लिखा कि वह शुद्ध अलंकृत कविता की तरह पढ़ा गया।

मेरे डॉ. जाकिर हुसैन मेमोरियल लेक्चर - 'एजुकेशन, डेवलपमेंट एंड मेकिंग ऑफ ए होल बीइंग' के पाठ का उन्होंने अनुवाद किया था जो मूल की भावना को पकड़ने और उसमें एक नया जीवन और प्रकाश डालने का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। वह अनुवाद गहराई, सजीवता और विद्वता में मूल से भी श्रेष्ठ बन गया था। वे शाब्दिक अनुवाद नहीं

करते थे; वे मूल की भावना को बरकरार रखते हुए भी उसे एक नया रचनात्मक आयाम प्रदान कर देते थे। शब्दों का चयन, वाक्यों की संरचना और तरोताजापन, सादगी और मौलिकता उनके रचनात्मक लेखन को मनमोहक और अनुपम बनाती थी।

मेरी किताब, 'ह्यूमन बॉन्डेज-ट्रेसिंग इट्स रूट्स इन इंडिया' जब सेज पब्लिकेशंस द्वारा प्रकाशित हुई थी तब उन्होंने मुझे २०११ में आश्वासन दिया था कि वे इसका हिंदी अनुवाद करने का प्रयास करेंगे। वास्तव में, उन्होंने अनुवाद का काम गंभीरता से शुरू भी किया था और मुझे कुछ अध्यायों के हिंदी अनुवाद के नमूने भेजे थे। किसी भी मानक के अनुसार, वे कला के अनुकरणीय उदाहरण थे। अफसोस कि उनके खराब स्वास्थ्य और अन्य बाधाओं के कारण यह काम तार्किक परिणति तक नहीं पहुंच सका। अब उनके असामयिक दुखद निधन के साथ, यह काम अधूरा ही रह गया है और पूरा नहीं हो सकता क्योंकि रमेशभाई के कद और साहित्यिक क्षमता वाले अनुवादक को खोजना मुश्किल है।

सबसे बड़ी बात यह कि रमेशभाई अपने लेखन, वक्तव्यों, व्यवहार, आचरण और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में बेहद मानवीय थे। उनकी पत्नी का निधन पहले ही हो गया था। वे खुद लंबे समय से बीमार थे, लेकिन उन्होंने जीवन का उत्साह और आनंद कभी नहीं खोया।

लगभग एक साल पहले जब वे कोरोना वायरस से संक्रमित थे, उन्हें सांस लेने में तकलीफ थी। वे ऑक्सीजन वेंटिलेटर पर थे और मैं उनके स्वास्थ्य की स्थिति के बारे में सबसे अधिक चिंतित था। मैंने उनसे पूछा था कि भगवान न करे आपको कुछ हो जाये तो 'रचनात्मक साहित्य की दुनिया और सक्रियता का, विशेष रूप से 'अनौपचारिका' का, क्या होगा? उनकी प्रतिक्रिया उनके पूर्ण आशावाद तथा सर्वोच्च विश्वास का संकेत थी। उनका बहुत दृढ़ और निर्णायक उत्तर था-अनौपचारिका नहीं मरेगी, भले ही मेरा जीवन पूरा हो जाये। उन्होंने हमेशा खुद में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया और जैन धर्म के प्रमुख सिद्धांत 'जीओ और जीने दो', को व्यवहार में लाते हुए मनुष्य की जन्मजात अच्छाई, बड़प्पन, निडरता और अजेय भावना में कभी विश्वास नहीं खोया।

अंत में मैं यही कहूंगा कि रमेशभाई ने अपने जीवन में कई तकलीफों, क्लेशों और उलटफेरों को भुगतने के बावजूद मानव आत्मा की जन्मजात अच्छाई, बड़प्पन, निडरता और अजेयता का प्रतिनिधित्व किया।

'भाई' शब्द की अभिव्यक्ति संविधान की प्रस्तावना में 'बिरादरी' के रूप में स्पष्ट रूप से सामने आती है। 'भाई' उसे दर्शाता है जो राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात और ओडिशा की संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। इसका अर्थ है एकजुटता। इसका अर्थ है एक अच्छे और अभिलाषित काम के लिए सामंजस्यपूर्ण समझ, सहयोग और समन्वय। इसका मतलब है तालमेल और मिलनसारिता। इसका मतलब है
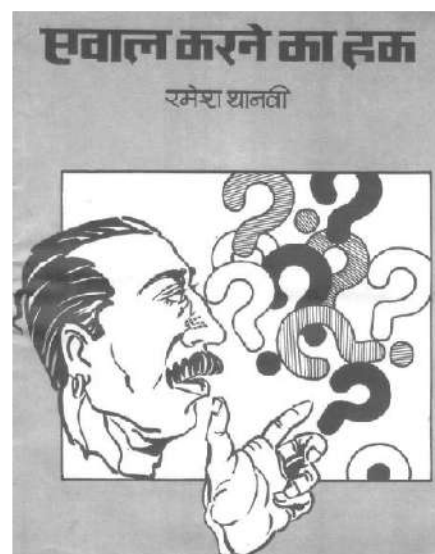
एकता और एकजुटता। यह हमें ऋग्वेद के शब्दों की याद दिलाता है जो कहते हैं:

एकमत से सलाह दें

सभा को सर्वसम्मत होने दें

अपने मन को सर्वसम्मत होने दें

मगर इस तरह की एकता और सर्वसम्मति का मतलब मतभेद या असहमति के विचारों का दमन या असहिष्णुता नहीं है। ऐसा होगा तो वह आध्यात्मिक सद्भाव या सह-अस्तित्व के विपरीत होगा।

महान स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक और शिक्षाविद् मोहन सिंह मेहता जी को प्यार से 'भाई साहब' कहा जाता था। अनिल बोर्डिया जी अपने मित्रों, साथियों और सहकर्मियों के बीच अनिल भाई के नाम से जाने जाते थे। उनके आदरणीय पिता 'दादा भाई' के नाम से जाने जाते थे। यह मेरा बड़ा सौभाग्य रहा कि जैविक रूप से नहीं जुड़े होने पर भी रमेशभाई सच्चे अर्थों में मेरे सबसे प्रिय, पसंदीदा और प्यारे भाई थे।

अब जब वे अपने परमधाम को चले गये हैं जहां से कोई वापस नहीं लौटता, तो मैं उन्हें हाड़-मांस के इंसान के रूप में नहीं देख पाऊंगा। यह मेरी ऐसी क्षति है जिसका कोई पुनर्भरण नहीं कर सकता। इस शोक की स्थिति में मुझे श्रीमद्भागवद् गीता के इन वचनों से ही अपने को सांत्वना देनी होगी कि क्योंकि जन्म के लिए मृत्यु निश्चित है, जैसे मृत के लिए जन्म निश्चित है; इसलिए, तुम्हें अपरिहार्य पर शोक नहीं करना चाहिए। ❑

सी-६६, अनुपम अपार्टमेंट्स पॉकेट, एन्क्लेव, नयी दिल्ली-११००९६

फोन नं.-(०११) २१२००१२५

मो.-९५६०२०२३५२

दिवंगत आदरणीय श्री रमेश थानवी

❑
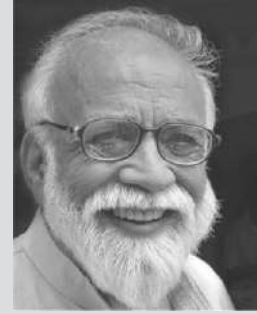
'अनौपचारिका' के संस्थापक संपादक श्री रमेश थानवी जी इतनी जल्दी गुज़र जाएंगे, यह मेरे सोच के बाहर था। जनवरी २०२२ में जयपुर के पूर्व निवासी लेकिन कई सालों से कैलिफ़ोर्निया, अमरीका में बसे मेरे पुराने दोस्त (निर्मल व तारा सेठिया) अपने मूल परिवार के पास २-३ हफ़्तों के लिए जयपुर आये हुए थे। उन्हें पता चला कि मेरी पत्नी शशि और मैं स्वैच्छिक बतौर चल रहे पुस्तकालयों को हिंदी की पुस्तकें भेंट में देकर मदद करते हैं। यह सुनते ही उन्होंने बताया कि रमेश थानवीजी भी जयपुर में एक सार्वजनिक पुस्तकालय संचालित करते हैं तो उनको भी पुस्तकें भेजिए। हमने सोचा कि इतने सुंदर प्रस्ताव पर कुछ और पूछने या कहने की गुंजाइश ही नहीं है।

मेरे पास रमेश थानवी जी का ईमेल संपर्क नहीं था। इसलिए उक्त दोस्तों ने वह भी भेज दिया। मैंने सोचा कि आराम से उनको ईमेल करके पूछ लूंगा कि किस तरह की पुस्तकें चाहिए होंगी। लेकिन १२ फरवरी २०२२ को उनके अनंतकालीन सफ़र पर चले जाने की दुःखद और झकझोरने वाली खबर पाकर बेहद अफ़सोस हुआ कि मैंने बहुत देर कर दी। इस देरी के लिए अपने-आप को जीवन भर माफ़ नहीं कर पाऊंगा। बस, उम्मीद यही है कि उनके बाद जो साथी उस सार्वजनिक पुस्तकालय की समृद्ध विरासत को आगे बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार हैं, वे हमसे संपर्क करेंगे और हम अपने खुद से किये वादे को पूरा कर पाएंगे।

मेरा रमेश थानवी जी से ३-४ दशकों का संवाद रहा है। मुलाकात के बगैर ही एक-दूसरे को ऐसे जान गये कि जैसे पुराने पड़ोसी हों। सन् २००९-१० में देशभर में संसद द्वारा पारित 'शिक्षा का अधिकार कानून, २००९' का मामला गर्म था। सारा मीडिया और मशहूर 'प्रगतिशील' चिंतक इसका गुणगान करते हुए अघाते नहीं थे और इसे ऐतिहासिक व क्रांतिकारी घोषित कर रहे थे। उस दौर में मैं इस कानून के खिलाफ़ झंडा लेकर जनांदोलन खड़ा कर रहा था। मेरी राय में इस कानून के कई प्रावधान, संविधान में निहित मौलिक अधिकारों का खुलकर उल्लंघन करते हैं। मैंने आंकड़ों व तर्क सहित दावा किया था कि इस कानून के लागू होने से स्कूली शिक्षा में न केवल गैर-बराबरी और भेद-भाव बढ़ेगा वरन् शिक्षा के निजीकरण व बाज़ारीकरण की

❑

अनिल सद्गोपाल

डॉ.अनिल सद्गोपाल देश के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् हैं। शिक्षा में भी वे लीक से हटकर कुछ करने के लिए जाने जाते हैं। १९६८ में कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से मॉलिक्यूलर बायोलॉजी में पीएचडी करने के बाद वे मध्यप्रदेश में आ कर बस गये और वहां होशंगाबाद में किशोर भारती की स्थापना की। उनकी पहल से ही मध्य प्रदेश के राजकीय शालाओं में होशंगाबाद विज्ञान नाम का कार्यक्रम चलाया गया था। मध्यप्रदेश में एकलव्य नाम की संस्था की स्थापना की गयी। डॉ. सद्गोपाल दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा विभाग के प्रोफ़ेसर और कला संकाय के डीन भी रहे।
डॉ. सद्गोपाल को विज्ञान और टेक्नोलॉजी के व्यावहारिक उपयोग पर शोध के लिए जमनालाल बजाज पुरस्कार भी दिया गया है।
यहां प्रस्तुत है रमेश थानवी के बारे में उनके विचार। ❑ सं.

रफ़्तार में भी तेजी आएगी जैसी मेरी आशंका थी, ठीक वैसा ही आने वाले सालों में हुआ भी। मेरी १२८ पृष्ठों की एक पुस्तिका 'संसद में शिक्षा अधिकार छीनने वाला बिल' शीर्षक से कानून पारित होने के पहले ही छप चुकी थी।

एक दिन रमेश थानवी जी का अचानक फ़ोन आया कि आप इस कानून पर 'अनौपचारिका' के लिए एक विस्तृत आलेख लिख दीजिए। मैंने छूटते ही कहा, मेरे लिए यह तो वाकई बड़े सम्मान की बात है कि आप ऐसा कह रहे हैं लेकिन मैं लिखूंगा नहीं। अगर मैंने लिख दिया और आपने हूबहू छाप दिया तो जयपुर से लेकर दिल्ली तक की सारी नौकरशाही, शिक्षा मंत्री व मीडिया के संपादकगण आदि न केवल आपके वरन् 'अनौपचारिका' के भी खिलाफ़ हो जाएंगे और 'अनौपचारिका' को भारी नुकसान भी पहुंचा सकते हैं जो मुझे कतई मंजूर नहीं है। आप रहने दीजिए। एकाध दिन बाद फिर फ़ोन आया, मैंने आगा-पीछा सब सोच लिया है। आप अपना आलेख लिख दीजिए। हम उसे ज़रूर छापेंगे। 'अनौपचारिका' अगर सरकारी नीतियों का विरोध करने से कतराएगी तो फिर इसके निकलते रहने का कोई मतलब ही नहीं बचता। मैंने शर्त रखी, मेरे आलेख में आप अर्धविराम तक नहीं बदलेंगे, जैसा मैं भेजूंगा हूबहू वैसा ही छापेंगे।

इतनी कड़क शर्त यह सोचकर रखी कि यह शर्त सुनकर दुनिया का कोई भी संपादक छापने की सहमति नहीं देगा। लेकिन रमेश थानवी जी ने न केवल शर्त मानी बल्कि उसका पूरी ईमानदारी से पालन भी किया जबकि 'अनौपचारिका' के उसी अंक में तत्कालीन केंद्रीय शिक्षा सचिव का उक्त कानून के पक्ष में लेख छपा जबकि मेरे आलेख में भारत सरकार की स्कूली शिक्षा नीतियों व उस कानून की तीखी आलोचना थी। मैं समझ गया कि रमेश थानवी जी उस मिट्टी से कतई नहीं बने हैं जिससे नवउदारवादी पूंजीवादी नीतियों, विश्व बैंक व विश्व व्यापार संगठन का अथक यशगान करने वाले अन्य संपादक बनते हैं। उस दिन से मेरी दिमागी छवि में रमेश थानवी जी उसी कतार में बैठे दिखने लगे जिसमें राहुल सांकृत्यायन, रघुवीर सहाय और प्रभाष जोशी जैसे दिग्गज संपादक दिखते रहे हैं।

आज भी जब मुझसे 'शिक्षा का अधिकार कानून, २००९' पर हिंदी में लिखे मेरे विचार की मांग की जाती है तो मैं बेहिचक 'अनौपचारिका' के जून २०१० के अंक में छपे आंकड़ों, ग्राफ़ व तालिकाओं से भरपूर मेरे लंबे आलेख की पीडीएफ़ प्रति भेज देता हूं और उसके साथ रमेश थानवी जी को याद करके उनको तहेदिल सलाम भी कर देता हूं। अब वे हमारे बीच नहीं हैं। इसलिए मैं भारत की उस मिट्टी को हमेशा सलाम करता रहूंगा जिसने रमेश थानवी जी जैसे निर्भीक, बेबाक व जनहित में सत्य पेश करने से कतई नहीं कतराने वाले संपादक को बनाया!❑

भोपाल (मध्यप्रदेश)
१६ मार्च २०२२
मो.-९४२५६०९०६३७

रमेश भाई की सुखद यादें

❑

भाई अनिल बोर्दियाजी की वजह से ही तीस वर्ष पूर्व मेरी रमेश भाई से पहली भेंट हुई। मैं अनिल भाई के कारण लोक-जुम्बिश से जुड़ा और मैंने शिक्षकों के लिए १९९६-१९९९ तक चार पन्नों को एक अखबार फुलझड़ी लिखा। उसी दौरान मुझे फलोदी में बड़े भाई साहब शिवरतन भाई से उनके घर पर मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शिवरतन और रमेश भाई दोनों का शिक्षा से बेहद गहरा जुड़ाव था। उनके पास गिजुभाई की शिक्षण पत्रिका का एक सेट था जिसका किसी अन्य के पास होना बहुत दुर्लभ था। मैं शिवरतन भाई का अनंत आभारी हूँ क्योंकि उनके द्वारा शुरू की गयी पत्रिका 'नया शिक्षक' (टीचर-टुडे) में ही पहली बार मैंने गिजुभाई की अनमोल कृति 'दिवास्वप्न' पढ़ी। उसके चंद सालों बाद जब मैंने 'तोत्तोचान' पढ़ी तो लगा कि इस अनूठी पुस्तक को हिंदी में आना ही चाहिए, और रमेश भाई ने उसकी ज़िम्मेदारी उठायी। उन्होंने तोत्तोचान के अनुवाद की ज़िम्मेदारी पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा जी को सौंपी। तोत्तोचान को नेशनल बुक ट्रस्ट ने छापा और २०२१ में उसका १५ वां संस्करण छपा। उसके बाद पूर्वाजी ने दुनिया की सर्वश्रेष्ठ और अमर एक दर्जन पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद किया। इनमें बच्चे असफल कैसे होते हैं (जॉन होल्ट), बच्चों का जीवन (जॉर्ज डेनीसन), टीचर (सिल्विया ऐशटन वार्नर), समरहिल (ए. एस. नील), अब हम आज़ाद हैं (सडबरी वैली स्कूल, डेनियल ग्रीनबर्ग) आदि पुस्तकें शामिल हैं।

करीब अट्ठाइस वर्ष पहले रमेश भाई मेरे साथ पुणे में आकर कुछ दिन रहे थे। कुछ महीने पहले उनका फोन आया था और वो फिर पुणे आने को बहुत इच्छुक थे। उनकी लेखनी में जादू था। वे कठिन सिद्धांतों को अत्यंत सरल शब्दों में, और छोटे-छोटे वाक्यों में लिखने में माहिर थे। उससे आम इंसान भी उनके लेखों को आसानी से समझ पाता था। उनकी लेखन शैली ने 'अनौपचारिका' को एक अलग पहचान हासिल करायी थी। एक गांधीवादी चिंतक होने के नाते उनकी धार्मिक सद्भाव में रुचि थी और युद्ध से घृणा थी।

रमेश भाई अपनी लिखी पुस्तकों को खुले दिल से बांटते थे। शिक्षा का सच, शिक्षा की परीक्षा, भोर भई, देखो बेटी बादल आए, रहमान भाई उनकी लोकप्रिय पुस्तकें हैं। उन्होंने नेशनल

❑

अरविन्द गुप्ता

जाने-माने सुप्रसिद्ध चिंतक, विचारक, बाल वत्सल पद्मश्री श्री अरविंद गुप्ता ने शिक्षा के जगत में बालकों की शिक्षा के नये-नये प्रयोग किये हैं। रमेश थानवी से उनकी घनिष्ठ मित्रता के साथ 'अनौपचारिका' से भी उनका रिश्ता काफी पुराना एवं घनिष्ठ है। पिछले कई वर्षों से 'अनौपचारिका' में बालकों की शिक्षा से संबंधित उनके कई आलेख प्रकाशित हुए हैं। पिछले वर्ष ही नेशनल बुक ट्रस्ट से छपी 'घड़ियों की हड़ताल' की पांच लाख प्रतियों ने उनके लेखन में चार चांद लगा दिये हैं। अरविन्द गुप्ता का मानना है कि रमेश थानवी को हम सच्ची श्रद्धांजलि 'अनौपचारिका' को वेबसाइट पर डाल कर दे सकते हैं। ❑सं.
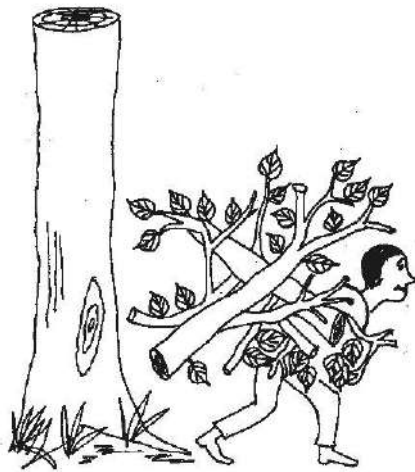
बुक ट्रस्ट के लिए भी कई बाल पुस्तकों का अनुवाद किया। रमेश भाई की अपनी किताब – 'घड़ियों की हड़ताल' की पिछले साल नेशनल बुक ट्रस्ट ने पांच लाख प्रतियां छापीं। उन्होंने मुझे अपनी सभी पुस्तकें भेजीं और आज वे सभी archive.org पर नि: शुल्क डाउनलोड के लिए उपलब्ध हैं।

दुलारी

पिछले कई वर्षों से मैं रमेश भाई से विनती करता रहा कि वे 'अनौपचारिका' के पुराने अंकों के मुझे पीडीएफ भिजवाएं, लेकिन वह काम अधूरा ही रहा। शायद यह संभव हो सकता है कि पुराने कम्प्यूटर्स की हार्ड-डिस्क खराब हो गयी हों या अब अनुपलब्ध हों। अनौपचारिका, लगभग ४५ वर्षों से निकलती आ रही है। हिंदी में वो एक अनूठी शैक्षिक पत्रिका है जिसकी शुरुआत रमेश भाई ने की थी। राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति और उनके हम सभी हितैषियों को मिलकर 'अनौपचारिका' के सभी अंको को आनलाइन उपलब्ध कराना चाहिए। यही रमेश भाई के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ❑

फ्लैट ४०१, चित्रकूट बिल्डिंग, बी–१०६५, गोखले क्रास रोड, मॉडल कॉलोनी, पुणे–४११०१६ मो.६१–७३५०२८८०१४

एक स्मृति बिंब

❑

श्री रमेश थानवी
प्रेम के तंतुओं से बने
एक सीधे-इंसान थे। ईश्वर
उनका सखा था
वे ईश्वर को परम कृपालु मानते थे
और उसे
नित नये नाम देते थे-
परिहास में भी और पीड़ा में भी
आक्रोश में भी और भक्ति में भी।

रमेश जी के लिए
प्रेम सबसे बड़ा पुरुषार्थ था।
वे बच्चों से प्रेम करते थे,
लोक जीवन से प्रेम करते थे,
संत साहित्य से प्रेम करते थे,
और
शिक्षा के माध्यम से भी वे मनुष्य को
संपूर्ण सृष्टि का प्रेमी ही बनाना चाहते
थे।

श्री रमेश थानवी कलम के जादूगर
थे।
वे लिख रहे हों या बोल रहे हों
शब्दों को बहुत सजगता और
सावधानीपूर्वक
तोल कर इस्तेमाल करते थे।
शब्दों से काम लेते हुए और
शब्दों का काम करते हुए
वे अक्सर भवानी बाबू को याद करते
थे।
भवानी बाबू जो कहते थे -
शब्द का सही उपयोग योग है
और मनमाना उपयोग भोग है।
योग कल्याणकारी है
और भोग विनाशकारी।

श्री रमेश थानवी के लिए
गांधी एक संपूर्ण दर्शन था
जीवन का भी और मृत्यु का भी।
गांधी ही उनकी आंख का आंसू था
और गांधी ही होठों की मुस्कान।
अंतिम वर्षों में
गांधी से जुड़ी बेचैनी ही
उनका सबसे बड़ा दुःख था
और गांधी से जुड़ी
आशा ही सबसे बड़ा सुख।

श्री रमेश थानवी के लिये
मृत्यु नये जीवन का आह्वान था,
रामबाग की यात्रा थी,
एक अधूरे संकल्प का पूर्णायन था
और संसार सागर पर अंतिम दृष्टिपात
था।

मृत्यु की सबसे बड़ी त्रासदी
यह है कि

❑
ओमप्रकाश टाक

श्री ओमप्रकाश टाक रमेश थानवी के परम मित्र हैं। टाक साहब द्वारा लिखी गयी पुस्तक हाल ही में प्रकाशित 'मस्जिद में ब्राह्मण' उन्हें बहुत पसंद आयी थी। जीवन के अंतिम क्षणों में इसका पोथी वाचन हुआ और इस पर लंबी चर्चा भी समिति के साथियों के साथ हुई।
टाक साहब थानवी साहब की स्मृतियों को एक बिंब के रूप में देखते हैं। वे उन्हें प्रेम के तंतु से बना इंसान, ईश्वर का सखा, लोक जीवन से लेकर संत साहित्य का प्रेमी कलम का जादूगर की संज्ञा देते हैं। गांधी उनके समग्र जीवन दर्शन में रचे बसे थे। ❑**सं.**

आदमी फिर लौटकर नहीं आता
वह संसार का छोटा घर छोड़
परमात्मा के बड़े घर में
बसेरा ले लेता है।

श्री रमेश थानवी ने
परमधाम की ओर प्रस्थान किया
बहुत शांति से... चुपचाप... हौले से...
ताकि कोई राह न रोक ले,
ताकि किसी को कोई तकलीफ न पहुंचे,
ताकि अधूरी पढ़ी किताब का कोई पन्ना फड़फड़ा न उठे।
परम लोक की नयी कुटिया, नया कुटुम्ब
मुबारक हो
श्री रमेश थानवी। ❑

रामद्वारा गली, बागर चौक, जोधपुर
मो.९८२९०२७०१०

रमेश थानवी : एक अनूठा व्यक्तित्व

❑

रमेश थानवी जी पर लिखना आज कितना कठिन हो रहा है, लगता है कि उन्हीं से पूछ लूं, आदतन यह भूल ही जाती हूँ कि आज हमारी समस्या को सुलझाने के लिए वे नहीं हैं वरना हम अपनी फंसरी, गांठें, अपनी उलझनें जाने क्या-क्या लेकर उनके पास नहीं पहुँच जाते और सबका हल होता उनके पास। हालांकि इनमें से अधिकांश भाषा, साहित्य, शिक्षा और संस्कृति से जुड़ी होती पर अनुषांगिक समस्याओं में तो उनके पास स्वास्थ्य, विवाह, दांपत्य, परिवार, बाल-बच्चे, उनका पालन -पोषण आदि सम्बन्धित भी बहुत सारी पहुँचती थीं और सब पर स्वस्थ विमर्श होकर एक हल की राह निकल आती थी। क्या-क्या याद करें हम थानवी जी आपके बारे में --- एक बड़ा सा आख्यान या कि पुराण है आपसे सम्बंधित। श्रद्धेय थानवी जी के लिए स्वर्गीय लिखना उपयुक्त ही नहीं लगता क्योंकि उनका स्वर्ग तो मर्त्यलोक में ही बसा था। उन्हें जो लोग जानते हैं उन सबको उनके इस धरा-प्रेम का गहरा अनुभव है, मुझे भी। उसका सबसे बड़ा उदहारण उनकी बच्चों के लिए हाल में ही शुरू की हुई आनंदशाला है, कमोबेश गुरुदेव रवींद्र नाथ द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन की आनंद पाठशाला की तर्ज़ पर है। बच्चों के स्वाभाविक विकास के लिए प्राकृतिक वातावरण सृजित करने का आग्रह। पहले तो हम उनके स्वास्थ्य के प्रति बड़े चिंतित थे। इस उम्र में वे कोरोना को हराकर लौटे थे और हँसते हुए बता रहे थे कितने लोग हैं उनकी चिंता करनेवाले, फिर कोरोना की क्या मजाल की उनका कुछ बिगाड़ ले। और फिर उनके पोते टिंकू (डॉक्टर मिहिर थानवी) के रहते कहा था 'आ जाइए देखिए बच्चों के साथ इस आनंदशाला में कितना आनंद है, बच्चों की खुशियाँ कितनी अपार हैं ' और मैं देख रही थी कि थानवी जी का वात्सल्य कितना अपार था। बच्चों की धमा-चौकड़ी, खेलकूद और मस्ती की संगति में मानो उनका भी बचपना अपनी नयी ऊर्जा के साथ उभर आया था। वे बच्चों क साथ बच्चा होना बखूबी जानते थे। सितम्बर -अक्तूबर की 'अनौपचारिका' का आवरण ही इतना मोहक था कि देर तक मैं निहारती ही रही और भीतर के पन्नों पर थानवी जी की संलग्नता पर विस्मित होती रही। कोरोना को हराकर लौटे थे थानवी जी, पर उनके स्वास्थ्य पर खतरा बना ही हुआ था, पर उनकी ऐसी प्रेरक

❑

मंजु रानी सिंह

शांति निकेतन में हिंदी विभाग की अध्यक्षा रही श्रीमती मंजु रानी कहती हैं कि अनौपचारिका ने शांति निकेतन में आकर अपना ही घर बना लिया।
वर्ष २००६ में शिक्षाविद् रमेश थानवी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्मृति व्याख्यान कड़ी के शांति निकेतन में पहले व्याख्याता थे। उन्होंने न केवल मानवीय मूल्यों का आगाज किया बल्कि संवेदना भरे लेखन से अपने चिंतन से और अपनी मौलिकता से मित्र जनों एवं पाठकों को पल्लवित किया, संपोषित किया।
बालकों और उनके बचपन से प्यार करने वाले रमेश थानवी उनके बचपन में ही सत्य का बीज बो देना चाहते थे। यही वजह थी कि समिति में आनंद शाला खोलना उनका एक बड़ा सपना था।
प्रस्तुत आलेख में शिक्षान्वेषी रमेश थानवी की जीवन यात्रा के साथ सभी पाठक एक बार फिर उनकी कर्म यात्रा के सहयात्री हो सकेंगे। ❑ **सं.**

मिशन
ताना-बाना
घर-घर में पोथी घर

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर

सक्रियता से हम शायद भ्रमित हो गये और उनके स्वास्थ्य के प्रति थोड़े गाफिल भी। वैसे तो वे अपने परिवार के बीच काफी निगरानी में रहते थे, इसलिए मैं बहुत आश्वस्त हो गयी थी, और तो और उन्होंने मुझे जीवनानंद जी की कविता का अनुवाद करने का काम भी दिया था जिसे अप्रैल में साथ ले जाने का कार्यक्रम बना रही थी जो कि पहले फरवरी का था। आज सोचती हूँ वही ठीक था। काश उनके दिये आश्वासन को मात्र उनका ममत्व मान टाल जाती। असल में तब जयपुर की ठंड का जिक्र अक्सर ही फोन पर होता रहता, जाहिर है कि अपने स्नेहियों को वे किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं देना चाहते थे। जो भी हो शिक्षा, संस्कृति और लोकमंगल के बहुत सारे सृजनकारी आयाम को उनके हाथों रूपाकार मिला, वे अहिंसक मुहिम के तौर पर अगली पीढ़ी के लिए प्रशस्त प्रेरक पथ बन खड़े हुए। न केवल आनंदशाला बल्कि नाना-नानी न्यास, मिशन ताना-बाना, घर-घर पोथी घर जैसे कई कार्यक्रम, जो मेरे देखे मर्त्यलोक पर स्वर्गलोक उतारने की ही मुहिम हैं। बहरहाल वे तो तार छेड़ गये बाकी आगे के संगीत की जिम्मेदारी नयी पीढ़ी के हाथ दे गये।

१९९९से संवाद था मेरा उनसे। शान्ति निकेतन जैसी अनौपचारिक शिक्षा-केंद्र के साथ आत्मसात मेरे लम्बे जीवनक्रम में अचानक 'अनौपचारिका' जैसी पत्रिका ने आकर मानो अपना घर ही बना लिया। उसने न केवल मेरे लेखक को जगाया बल्कि सम्पादक के साथ चेतनशील संवाद भी कायम कर दिया। 'अनौपचारिका' का तेवर और कलेवर मेरे देखे ऐसा था कि मानो उसे रवीन्द्रनाथ की पीढ़ी का ही कोई व्यक्तित्व निकाल रहा हो। सही शिक्षा और मानवीय मूल्यों का आगाज था वह।

यह पत्रिका लगातार मेरे और मेरे द्वारा उन इष्ट मित्रों के पास पहुंचती रही और इसने सबसे सगा सबन्ध बना लिया।

२००६ ईस्वी में मैंने विश्व भारती शान्ति निकेतन के हिन्दी विभाग में अपनी अध्यक्षता के दौरान उन्हें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्मृति व्याख्यानमाला की कड़ी में आमंत्रित किया था। इस सीरिज के वे पहले व्याख्याता थे जो अपने साथ एक लघु पुस्तिका 'अमन एव अहिंसा की राह पर संत कवियों के साथ' शीर्षक से बना कर एक हजार प्रति लाये थे। उन्होंने इन प्रतियों को यहाँ के प्राध्यापकों और विद्यार्थियो के बीच मुक्तमना होकर बांटा। उन्होंने अपने व्याख्यान में हमें जाम्भो जी-प्रत्येक रूंख को जीवित रखने वाले देवता (लोक देवता) के बारे में बताया। हमें यह थानवी जी से ही पता चला कि राजस्थान में यह कहावत चलती है की 'सर सान्टे जो रूंख बचे तो ही सस्तो जान'। उन्होंने बताया था कि यह केवल लोकोक्ति नहीं, इसे सच करने वालो की संख्या लाखों में है।

अपनी पत्रकारिता और लेखन के जरिये रमेश जी ने जिन मानवीय तत्वों को अपनी संवेदना, अपने संस्कार, अपनी विद्वता, अपने चिंतन और अपनी

मौलिकता से पल्लवित व संपोषित करने का प्रयास किया, उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है बचपन।

आदमी में उसका बचपन सबसे मूल्यवान पक्ष है और वह हमेशा अबाधित रहे, जीवंत रहे, खिलता - खेलता रहे और उसकी मौलिकता का हनन किसी भी प्रकार न हो , रमेश जी के लेखन और व्यवहार दोनों में इसका निर्वाह दिखायी पड़ता था।

इस संदर्भ में उनके आदर्श हैं नचिकेता, जिनके पास उत्सर्ग का साहस है, जिसमें ज्ञान के लिए तीनों लोकों का राज छोड़ देने की कटिबद्धता थी। उनके माध्यम से रमेश थानवी ने प्रश्नों को महत्व देने वाली हमारी तेजस्वी परम्परा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है, जिसके प्रति उनकी गहरी आस्था रही है। वर्तमान समय में उसे निरंतर कमजोर करने वाली बुजदिल व्यवस्था से वे आहत होते थे । उन्हें बच्चों और बचपन दोनों से गहरा प्रेम और भक्तिमय आस्था थी । उनकी कविता हो कि लेख या संवाद, सबमें उनका हृदय और विवेक बचपन के प्रति उमड़ता नजर आता है। चूंकि बचपन आदमी की बुनियाद है इसलिए वे किसी भी तरह से उसके विकसनशील प्रवाह को कहीं से बाधित। खंडित या रसहीन होता नहीं देखना चाहते थे। गूंगी सभ्यता के आश्रय में पलती वर्तमान खामोश शिक्षा व्यवस्था के वे बिल्कुल खिलाफ थे। पचास वर्ष से एक आदेश अबोध बालकों के कानों में गूंजता रहा- 'खामोश रहो, चुप हो जाओ, शोर मत करो'। मैं क्या कहूं मेरे भाई, निर्मल और निश्छल बालकों का चहकना जिन अध्यापकों को शोर लगता है वे कैसे अध्यापक होंगे ? उनका प्रशिक्षण कैसा होगा? उनका दिलो दिमाग कैसा होगा ? ये कैसी विडंबना है कि बालक के कान में पहला आदेश 'खामोश रहो' का पड़ता है। इसे ही रमेश थानवी गूंगी सभ्यता का प्रतिफलन मानते थे । (देखिए-शिक्षा की परीक्षा , वाणी प्रकाशन , पृ.स. ६) शिक्षा के संदर्भ में थानवी प्रश्नोन्मुखी परंपरा के पक्षधर थे । वे मानते थे कि अध्यापकों को कठोपनिषद् के नचिकेता और यमराज दोनों के अंतर्संबंध को समझना होगा।

शिक्षान्वेषी रमेश थानवी बचपन को सत्यान्वेषण का बीजमंत्र देना चाहते थे, शिक्षा और इसका दायित्व शिक्षा व्यवस्था को देना चाहते था। वे मानते थे कि सत्यान्वेषण की इसी विरासत ने महात्मा गांधी को आजादी की लड़ाई लड़ने की ताकत दी। आज सत्य के आग्रह से पायी आजादी का हम सभी देशवासी निर्भयता से उपभोग कर रहे हैं।

अब तो धीरे-धीरे विश्व बैंक तरह - तरह के प्रलोभन देकर हमारी शिक्षा व्यवस्था को गुलाम मंत्र में बदलना चाहती है, इस बात से लेखक अनभिज्ञ नहीं हैं, इसलिए वे अपने तमाम लेखों से इसका विरोध करते हैं और पाठकों को आगाह करते हैं।

रमेश थानवी ने अपने लेखन में सुसंस्कार पर भी बड़ा बल दिया है। वे वैसी हर रचनात्मक परंपरा के पक्षधर हैं जो आदमी को लोक से जोड़े। 'स्व' से निकलकर 'पर' तक फैलाये। इस संदर्भ में उनके एक संस्मरणात्मक लेख 'रैदास

की बेटी' को याद किया जा सकता है। लेखक ने मकर संक्रांति के समय मोची जाति की एक लड़की को घर -घर मोमबत्ती और दिया-सलाई बांटते देखा है। यों तो संक्रांति के समय घेवरों, फीणियों व तिल के लड्डुओं का खाना-बांटना ही आम परंपरा है पर इस क्रम में रोशनी का दान अपने उजास में सर्वोपरि हो रहा था । लेखक ऐसे सुसंस्कारों के प्रति हमेशा आग्रही है क्योंकि ये ही मनुष्यता की शर्त बताते हैं। घेवर, लड्डू या कि फीणियों की दुनिया तो फिर भी सीमित है, वे रहें या न रहें कोई फर्क नहीं पड़ता, महत्वपूर्ण है 'आग' का होना। उसका सुरक्षित रहना। बाहरी और भीतरी दोनों ही आग जरूरी है मानवीय विकास के लिए। प्रमथ्यु ने भी देवताओं से अग्नि चुरा ली थी चाहे उसने कितनी भी यातनाएं झेलीं। 'आग' हमेशा रचनात्मक है, लेखक आग को सुरक्षित रखने वाली परंपरा को नमन करते हैं और बच्चों को इस माध्यम से सुसंस्कृत होते देखना चाहते हैं।

जिस शिक्षा व्यवस्था ने बालक से उसकी स्वभावगत सत्यनिष्ठा तथा निर्भयता छीन लेने में सफलता पायी है, वह भला उसे सुसंस्कार कैसे दे सकती है? लेखक की मान्यता थी कि बालक के पास भी सिखाने के अनंत गुण हैं, मसलन निर्मलता, सलोनापन, भोलापन, सहज विश्वास, नि: संशयता, भरोसा, वाणी का माधुर्य, करुणा, प्रेम, आह्लाद तमाम गुण। इतना ही नहीं जाति व धर्म से ऊपर उठ जाने की उदात्तता भी।
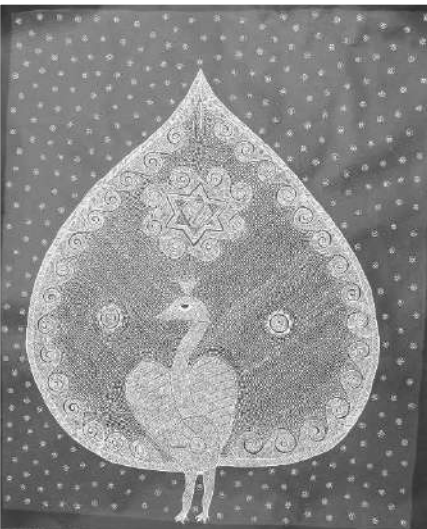
यह निर्विवाद है कि संतों ने लोकगीत और लोक भाषा के महत्व को समझकर उन्हें अपनी चेतना से समृद्ध बनाया और लोक हितकारी भी। कबीर, मीरा, रैदास, दादू, मलूक दास, रहीम, रसखान और जायसी की रचनाओं ने जातिगत एवं धर्मगत दीवारें तोड़कर लोक को जिस धर्म की राह बतायी, श्री थानवी उसी धर्म के अनुयायी थे। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इस राह का राही बनाने में उनके व्यक्तिगत संस्कार, परिवार आदि का तो महत्त्व है ही, साथ ही, उन महान पुस्तकों का अध्ययन सान्निध्य और सत्संग भी महत्वपूर्ण है जिन्हें थानवी जी ने अपनाया।

थानवी जी हर रचनात्मक परम्परा के पोषक थे। उनकी दृष्टि में पुस्तक -संग्रह भी एक सार्थक व रचनात्मक परंपरा है। इस क्रम में वे प्राचीन घरों में बनाये जाने वाले आलों को अपने संस्मरणात्मक लेखों में याद करते थे। उसी संस्कार से वे आज की शिक्षा, संस्कृति, कला के अतिरिक्त संत साहित्य की अतिशय खरीददारी करते रहते थे। आनंददायक विस्मय की बात तो यह है कि उनके सान्निध्य में ही मुझे पता चला कि तमाम किताबों की नयी-नयी प्रतियां पढ़ने के लिए ही नहीं, बल्कि दूसरों को पढ़ाने और बांटने के लिए भी होती हैं। ऐसी बांटने की कला कोई उनसे सीख सकता था। यह पुस्तकें ही हैं जिन्होंने उन्हें जीवन दृष्टि दी, जिन्होंने उनकी राह खोली, जिनमें मानव जीवन की सार्थकता के बीजमंत्र अंकित हैं। इस प्रकार की उनकी लोक संबद्धता उन्हें

व्यक्ति रूप में एक संस्था करार देती है।

आज रमेश थानवी जी हमारे बीच नही हैं, पर ह्रदय से उनके लिए यह उद्‌गार निकल रहा है कि वे संत थे। वे संत सम्प्रदाय के ही सदस्य थे–

वे हमारे जीवन पुरखे थे
वे हमारे आनंद वन थे
वे हमारे जम्भो जी थे
वे हमारे सोनार केल्ला थे
वे हमारे ज्ञान कोश थे
वे हमारे शब्द कोश थे
वे हमारे विश्व कोश थे
वे हमारे पुस्तक घर थे
वे हमारे तीर्थ ध्यान थे
वे हमारे भजन कीर्तन, गीत थे
वे हमारे भक्ति युग, संत युग, या कि स्वर्ण युग थे
वे हमारे पोथी युग थे
वे हमारे सेवा युग थे
वे वात्सल्य के आगार थे
वे अनूठे थे
सह जीवन के पाठ थे
उन्हें खोकर हम कंगाल हैं
उन्हें खोकर हम तंगहाल हैं।
आदमी होना ' सुपर' है
इसके वे प्रमाण थे ।
उन्हें ह्रदय से नमन।

बार –बार नमन ❑

उत्सव, सीमांत पल्ली
शान्ति निकेतन , बीरभूम, पं.बंगाल
पश्चिम बंगाल

साधक लेखक की समग्र शिक्षा–दृष्टि
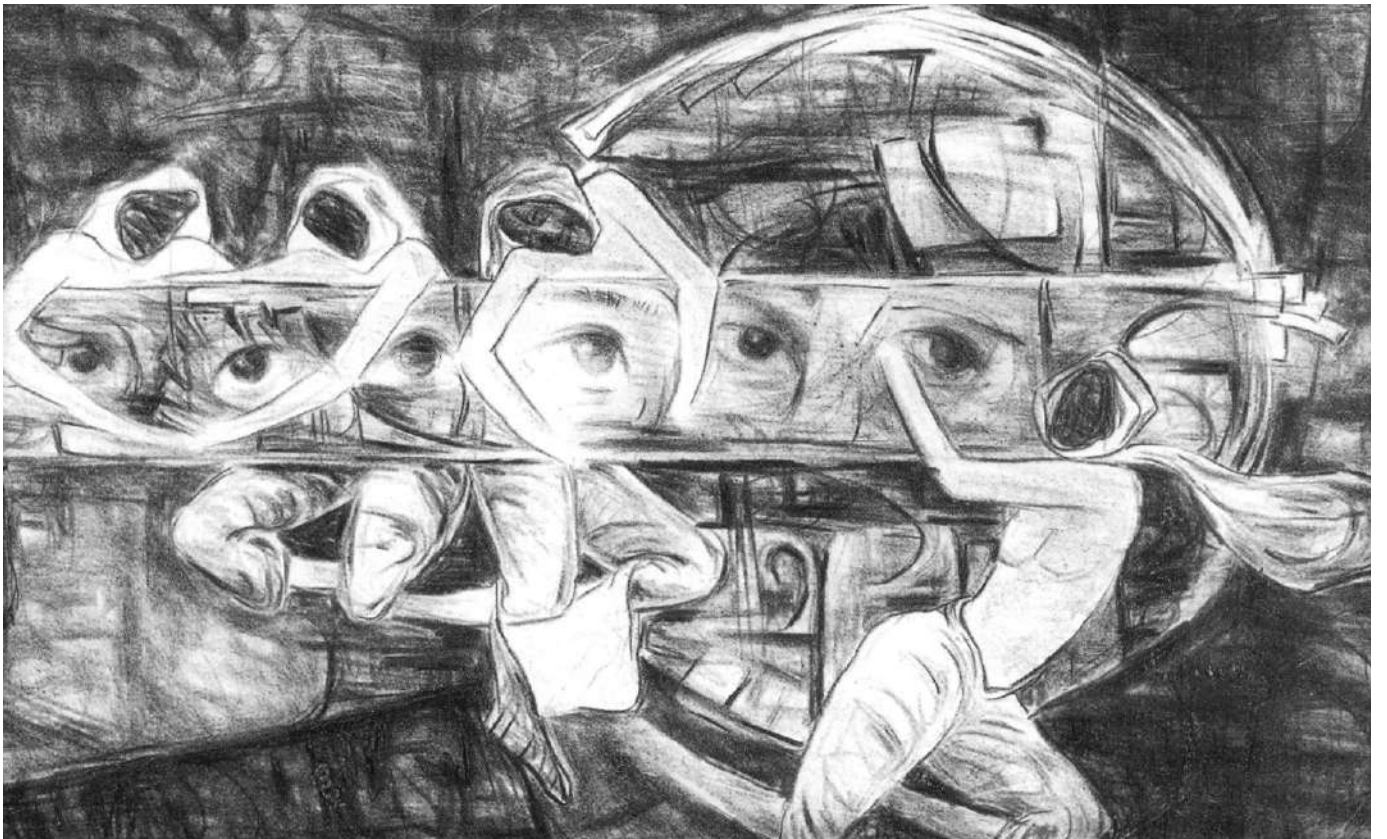
❑
डॉ. रेणुका राठौड

डॉक्टर रेणुका राठौड़ संस्कृत में पीएचडी हैं। जब कभी थानवी साहब को संस्कृत में लिखे किसी श्लोक या संस्कृत भाषा में शंका होती वे तुरंत रेणुका जी को फोन लगाते और उनसे बात कर उसके प्रति आश्वस्त हो जाते तभी उन्हें संतुष्टि होती। यह संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति उनकी गहरी रुचि होने के कारण था और इसके साथ दर्शन शास्त्री तो वे थे ही। डॉक्टर रेणुका राठौड़ संस्कृत अकादमी की निदेशक रही हैं। वर्तमान में भाषा विभाग में उपनिदेशक के पद पर कार्य कर रही हैं। भाषा विभाग की पत्रिका 'भाषा विमर्श' की संपादक भी हैं।
प्रस्तुत आलेख में रमेश थानवी के समग्र शिक्षा दृष्टि के सत चित आनंद का दर्शन साझा कर रही हैं रेणुका राठौड़।❑ सं.

❑

अभी कुछ दिन पूर्व ही सुबह सवेरे थानवी साहब का फोन आया था। असमय होने के कारण बहुत आशंकित मन से मैंने फोन उठाया तो उन्होंने बड़े गंभीर स्वर में मुझसे भारतीय वाङ्मय की समग्रता–पूर्ण दृष्टि पर कुछ प्रश्न किये, फिर आदि शंकराचार्य के 'निर्वाण–षट्क' पर बात करने लगे। थानवी साहब मुझे अपना 'रेडी रेकनर' कहते थे। जब भी संस्कृत भाषा और उससे संबंधित किसी भी विषय पर बात करनी होती थी, मुझे याद कर लेते थे। इसे मैं अपना सौभाग्य मानती हूं। संस्कृत वाङ्मय पर 'अनौपचारिका' में लगातार लिखने के लिए उन्होंने ही मुझे प्रोत्साहित किया था और 'वाग्धारा' नाम से एक शृंखला शुरू की थी।

शुरू–शुरू में मेरी भाषा कुछ क्लिष्ट और किताबी होती थी, जिसे उन्होंने बार–बार लिखवाकर खूब मांजा और फिर बाद में मज़ाक में कहने लगे थे कि अब तुम मेरी गुरु हो गयी हो। मुझे भी अपना लेख, या चाहे कोई रचना अथवा संपादकीय भी हो, उन्हें दिखाकर ही संतुष्टि मिलती थी। उनकी शाबाशी मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार होती थी। यह रिक्तता अब कैसे भरेगी, मुझे यह सूनापन प्रतिपल सता रहा है।

विषय चाहे कोई भी हो, उसकी तह में जाना, विषय के विविध पक्षों पर समग्र चिन्तन करना, उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। शब्द की वर्तनी से लेकर, उसकी उत्पत्ति, प्रयोग सभी पर वे गंभीर विचार करते थे। मैं उन्हें 'साधक–लेखक' कहती थी। गहरी जिज्ञासा के साथ चिन्तन, करने उसे जीवन से जोड़कर देखने वाले विद्वान् अब दुर्लभ हैं। थानवी साहब उनमें से एक थे।

संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति उनकी गहरी रुचि थी। चूंकि वे स्वयं दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे, इसलिए वैचारिक स्तर पर नहीं बल्कि भावनात्मक स्तर पर अधिक जीते थे या यों कहें कि दिमाग से अधिक दिल की बोली सुनते थे। भारतीय संस्कृति के अध्येता होने पर भी वे 'वैश्विक संस्कृति' के पक्षधर थे। रसूल हमजातोव की पुस्तक 'मेरा दागिस्तान' हम दोनों की प्रिय पुस्तकों में से एक थी। एक बार हम दोनों ने ही बड़ी देर तक उस पुस्तक पर बहुत प्रफुल्लता से बातें की थीं। अनेक बार चर्चाओं के दौरान हुए शिक्षा संबंधी विमर्शों को आज जोड़कर उनकी स्मृति में इस भावना के साथ समर्पित करती हूं कि ये उनके विचार हैं और मेरी लेखनी केवल उनकी संवाहक है।

संस्कृत के एक बहुत प्राचीन आचार्य हुए, नाम था वार्ष्यायणि, उनका कहना

था कि प्रत्येक वस्तु अथवा क्रिया छ: चरणों से होकर गुजरती है- उत्पन्न होना, अस्तित्व में रहना, परिवर्तित होना, बढ़ना, क्षीण होना और फिर अन्तत: नष्ट हो जाना–'षड्भावविकारा भवन्ति। जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति इति।' यह प्रक्रिया सामान्यत: सभी पर घटित होती है, चाहे मूर्त पदार्थ हो या अमूर्त पदार्थ।

प्राचीन भारतीय मनीषा बड़ी ही सूक्ष्मता से जीवन का विश्लेषण करती है। निर्माण और नाश का एक शाश्वत चक्र है जो सतत चलायमान है। यह न तो खंडित दृष्टि है और न ही एकांगी। इसमें समग्रता का सुख है। हमारे शास्त्र चार स्तरों पर मनुष्य–व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हैं–शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा। ये व्यष्टि निर्माण (इंडिविज्यूल बीइंग) के स्तर हैं किन्तु जब हम व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होते हैं तब इसके तीन प्रमुख घटक हैं–व्यक्ति, समाज और ब्रह्माण्ड। इनमें से हर एक किस प्रकार के दूसरे से गुंथा हुआ है, यह प्रक्रिया बहुत रोचक है।

व्यष्टि और समष्टि के समग्र विकास के लिए तीन प्रकार की शास्त्रीय पद्धतियां उपलब्ध हैं–श्रुति, स्मृति और दर्शन। इनमें दर्शन व्यक्ति–केन्द्रित है और मूलत: मनुष्य–निर्माण की प्रक्रिया का विवेचन और विश्लेषण करता है, स्मृतियां समाज केन्द्रित हैं तथा सामाजिक व्यवस्था के संतुलन एवं नियमन को संचालित करती हैं, श्रुति अर्थात् वेद–उपनिषद् आदि ब्रह्माण्ड केन्द्रित हैं तथा ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के रहस्यों का उद्घाटन करते हैं। इस पूरे ताने–बाने में कुछ भी एकांगी और पृथक् नहीं है। सभी तन्तु एक–दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से गुंथे हुए हैं। आज हम इसी समग्रता के संदर्भ में शिक्षा की भूमिका का विश्लेषण करेंगे। 'शिक्षा' थानवी साहब के सर्वाधिक सरोकार का विषय था। वर्तमान शिक्षा अर्थकारी है और पूरी तरह पाश्चात्य परम्परा की अनुगामिनी है।

एक बहुत प्रसिद्ध वैदिक वाक्य है– 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' अर्थात् जैसी पिण्ड (मनुष्य–शरीर) की बनावट है, वैसी ही ब्रह्माण्ड की भी है। भारतीय मनीषियों ने इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए व्यष्टिगत तथा समष्टिगत व्यवस्था का निर्माण किया। जहां एक ओर मानव–जीवन के पूर्ण सदुपयोग हेतु उसे चार पुरुषार्थों में वर्गीकृत किया–धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, वहीं समाज को चार वर्णों में विभाजित किया–ब्रह्माण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तथा इसी आधार पर चार आश्रम बने –ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। थोड़ी सी गहराई से देखने पर ये सभी पुरुषार्थ, वर्ण एवं आश्रम परस्पर समन्वित एवं साभिप्राय दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

मनुष्य के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करना शिक्षा का उद्देश्य है। इसीलिए आधुनिक युग में 'विकास या डवलपमेंट' के लिए बेहद प्रचलित शब्द है–अभ्युदय। वैशेषिक दर्शन में बहुत सुन्दर एवं सटीक परिभाषा दी गयी है– यतोऽभ्युदयनि: श्रेयससिद्धि: स धर्म: अर्थात् धर्म वह है जिससे अभ्युदय (लौकिक समृद्धि) एवं नि:श्रेयस

रमेश थानवी
साहित्यकार एवं शिक्षाविद्

जयपुर
दिनांक : 22 फरवरी, 2016

डा. रेणुका राठौड़
सागरमाथा
30, करणी उद्यान
तारानगर रोड, झोटवाड़ा
जयपुर–302 012

बड़े नेह की बेटी रेणुका,

तुमने कहा है कि मैं तुमको पत्र लिखूं। मैं तो चाहता ही यह हूं कि हमारे सारे संवादों का माध्यम हमारे पत्र ही रहें। मगर यह हमारी सभ्यता का दुर्भाग्य है कि उसने फोन, मोबाइल फोन, इण्टरनेट, वाट्सएप और एसएमएस जैसे कई माध्यम पैदा कर दिये हैं कि हम पत्र लिखना भूल गये हैं। मैंने लगभग 25 बरस पहले एक लेख लिखा था। शीर्षक था – "चिट्ठी अब नहीं आयेगी" वह जनसत्ता में छपा था। तब जनसत्ता का संपादन प्रभाष जोशी करते थे। उस लेख को पढ़ कर मेरे पास कई पत्र आये थे। किसी ने डरते हुए फोन भी किया था और क्षमा मांगी थी कि माफ कीजियेगा कि मैं फोन कर रहा हूं। मुझे तब उस लेख की सार्थकता अच्छी और प्रासंगिक लगी थी लेकिन यह किसे पता था कि हमारी जीवन–चर्या पर इतने आक्रमण हो जायेंगे और हम विवश हो कर अपने घुटने टेक देंगे और उनको अपने ही जीवन का अभिन्न अंग बना लेंगे।

अब जब पत्र लिखने बैठ ही गया हूं तो सबसे पहले तो यह बात कि प्रेम की बेटी मोना को लिखे पहले पत्र और दूसरे पत्र की प्रतिलिपि इस पत्र के साथ संलग्न कर रहा हूं। किशोर बेटियों के साथ हम कैसे संवाद करें ? इस बात का अंदाज तुम मोना को लिखे मेरे पत्रों से लगा लोगी। मोना को लिखे पत्र तुम अपनी बेटियों को पढ़ा सकती हो।

दूसरी बात यह कि मैंने इन्हीं दिनों एक लोककथा का पुनः सृजन किया है उसकी एक प्रति भी तुम्हें भेज रहा हूं। उसे तुम पढ़ोगी और फिर नना–वस्वी को भी पढ़ाओगी। वहीं से फीडबैक मिलेगा कि कथा कैसी है ? खुद भी पढ़ना और बताना।

तीसरी बात यह कि बड़ी बेटी बन कर तुम ने मुझे एक नये नेह–पाश में बांध लिया है। तुम्हें शायद इस बात का अंदाज नहीं है कि मैं एक दायित्व बोध से भी बंध गया हूं और ऐसा भी बार–बार लगता रहता है कि मैं उस दायित्व का निर्वाह नहीं कर रहा हूं। तुम भी अपनी पारिवारिक एवं दफ्तरी जिम्मेदारियों में व्यस्त रहते हुए कोई समय नहीं निकाल पा रही हो कि सिर्फ कुशलक्षेम की जानकारी भी समय पर मिल जाये। मैं भी अपने स्वभाव से लाचार हूं कि कई बार कई तरह की चिंताओं, आशंकाओं से रह–रह कर घिर जाता हूं। मेरा निवेदन है कि ऐसा मत किया करो। थोड़ी खबर लिया करो और थोड़ी खबर दिया करो।

मोना को लिखा आज का पत्र तुमको मेरी आज की मनःस्थिति से अवगत करा देगा और तुम चाहोगी तो चित्तौं दा के काम के बारे में कभी विस्तार से बताऊंगा। तुम्हारे लिए बहुत प्रेरणायी जानकारी होगी और तुम्हारी मार्फत वह जानकारी और लोगों तक भी पहुंचेगी, खासतौर से नना–वस्वी तक।

मेरे इन पत्रों से तुम मेरी इन दिनों की सक्रियता और स्वास्थ्य के प्रति आश्वस्त हो सकोगी, ऐसा मेरा विश्वास है। नना–वस्वी के लिए मेरा अनन्त दुलार।

बहुत प्यार और शुभाशीष के साथ !

तुम्हारा

(पारमार्थिक कल्याण) दोनों की प्राप्ति हो। वर्तमान में अर्थ केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था में अभ्युदय की चर्चा तो भरपूर है किन्तु नि:श्रेयस का कोई जिक्र नहीं है। मनुष्य जीवन की पूर्णता के लिए दोनों पक्षों की सबलता अपेक्षित है। अर्थ न केवल अभ्युदय कारक हो वरन् वह नि:श्रेयस परक भी हो। यह तभी संभव है जब शिक्षा का मूल उद्देश्य चेतना का विकास बने। अभी तक हमारी शिक्षा व्यवस्था यही सिखाती रही है कि सुख का साधन पदार्थ हैं जबकि भारतीय चिन्तन यह कहता है कि सुख चेतना की निर्मलता से आता है।

व्यवस्था की यह पीड़ा महाभारत काल से चली आ रही है। महर्षि व्यास के आर्तस्वर की अनुगूंज आज भी यथावत् है कि मैं दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर पूरे जोर से यह घोषणा कर रहा हूं कि धर्म से अर्थ और काम की सिद्धि होती है फिर भी धर्म का सेवन क्यों नहीं किया जाता?

ऊर्ध्वबाहुविरौम्येष न च

कश्चिच्छृणोति मे।

धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः

किन्न सेव्यते।।

भारतीय वाङ्मय में आर्थिक अभ्युदय के साथ को भी सदैव अनिवार्य माना गया, इसीलिए चारों पुरुषार्थों में सर्वप्रथम धर्म और काम की अभिव्यक्ति धर्म के संरक्षकत्व में हो, इसका यही मन्तव्य है। धर्म से यहां तात्पर्य 'स्वाभाविक मानव-कर्म' से है। यह सही है कि भोगोपभोग की सामग्री जीवन के लिए आवश्यक है किन्तु यथार्थ यह है कि अनियंत्रित भोग सुख के स्थान पर दु:ख देने वाला बन जाता है। 'अर्थ' के इस दार्शनिक पक्ष को भी शिक्षा में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है।

कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' के प्रथम अधिकरण में इसी मंतव्य को प्रकट किया है-

'धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। न
नि:सुखः स्यात्। समं वा
त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम्। एको
ह्यत्यासेवितो
धर्मार्थाकामानामात्मानमितरौ च
पीडयति'

अर्थात् काम का सेवन इस प्रकार किया जाये कि उससे धर्म और अर्थ को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचे। सर्वथा सुखरहित जीवन-यापन न करे। इस त्रिवर्ग का असंतुलित उपभोग बड़ा दुखदायी सिद्ध होता है।

वस्तुतः पुरुषार्थ मनुष्य जीवन के पूर्ण विकास की क्रमबद्ध सुन्दर योजना है जिससे मानव अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग कर अपना शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास कर सके। मनुष्य के द्वारा करणीय सभी कर्त्तव्यों को- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की परिधि में वर्गीकृत कर चार आश्रमों द्वारा सुचारु रूप से लक्ष्यप्राप्ति संभव है। यह ज्ञान भारतीय संस्कृति की अद्वितीय विशेषता है। जीवन जीने की इस पद्धति से शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास होता है। इहलोक और परलोक

का यह अद्‌भुत तालमेल इस ज्ञान को प्रत्येक काल में अनुकरणीय बनाता है।

धर्म और मोक्ष पर बल देकर भी भारतीय दृष्टि ने अर्थ और काम को भी स्पृहणीय माना। धर्म और मोक्ष आत्मिक उन्नति को प्रशस्त करते हैं तो शारीरिक विकास के लिए 'अर्थ' 'पुरुषार्थ' तथा मानसिक विकास के लिए 'काम' पुरुषार्थ का पालन भी उतना ही वांछनीय है।

दूसरे शब्दों में, शरीर की आवश्यकता अन्न है तो मन का भोजन कामना है। सृष्टि के मूल में कामना ही है, ऋग्वेद कहता है –

'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।' कामना आवश्यक तो है, पर कामना पर भी नियंत्रण होना चाहिए।

महाराज मनु कहते हैं–'काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।' अर्थात् शास्त्र को जानने तथा शास्त्रानुकूल कर्म करने की इच्छा करनी चाहिए। कामनाओं पर नियंत्रण का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। देवताओं ने ब्रह्मचर्य और तपस्या के द्वारा मृत्यु को भी जीत लिया –'ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमुपाघ्नन्।'

यह संतुलन ही शिक्षा है, ज्ञान है। जब तक दुःख, पीड़ा, क्लेशादि के द्वन्द्व बने हुए हैं तब तक अविद्या, अशिक्षा, संसार बने हुए हैं। समता ही शिक्षा है, ज्ञान है, विद्या है–

इहैवे तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।

जिनका मन समता में स्थित है उन्होंने इस संसार में रहते हुए ही उसे जीत लिया। समत्व की प्राप्ति मानव-जीवन का लक्ष्य है। यही शिक्षा का भी लक्ष्य है। इसीलिए ऋषियों ने 'अर्थ' की सार्थकता 'दान' में मानी। चाहे अर्थ हो अथवा काम, मूल्यों का उदात्तीकरण ही एकमात्र समाधान है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने ग्रंथ 'कैसी हो इक्कीसवीं शताब्दी' में लिखा– 'धर्म के बिना काम का परिष्कार नहीं होता और काम के परिष्कार बिना अर्थ का परिष्कार नहीं हो सकता। केवल अर्थशुद्धि घटित करने का अर्थ है– हम परिणाम को मिटाना चाहते हैं, कारण को मिटाना नहीं चाहते। यह एक भयंकर दार्शनिक भूल है।'

यह विचित्र विरोधाभास है कि आज विश्व में पहले की तुलना में अधिक सुविधाएं तथा भौतिक पदार्थ उपलब्ध हैं, पर व्यग्रता भी उसी मात्रा में बढ़ी है। स्पष्ट है कि विकास की हमारी अवधारणा में समग्रता का अभाव है। समग्रता के सामने व्यग्रता नहीं टिक सकती। शिक्षा में अर्थ की भूमिका क्या हो और किस प्रकार निर्धारित हो, इस विषय की गहन समीक्षा की जानी चाहिए।

मनुष्य जीवन बहु आयामी (मल्टी डायमेन्शनल) है। इसमें जहां एक आयाम रोटी-कपड़ा-मकान है, वहीं दूसरा आयाम सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की प्राप्ति है। रोटी-कपड़ा-मकान जहां 'अर्थ' पुरुषार्थ से जुड़ा है, वहीं सत्यं-शिवं-सुन्दरं 'काम' पुरुषार्थ का अंग है। अर्थ से शारीरिक एवं भौतिक

आवश्यकताओं की पूर्ति होती है किन्तु मन एवं बुद्धि की तृप्ति काम से होती है। शिक्षा में अर्थ की महत्ता है क्योंकि जीवन की समस्त सुख-समृद्धि इसी से संभव है, इसलिए एक सीमा तक इस पर बल आवश्यक है किन्तु अर्थ से काव्य, कला, भावना इत्यादि उत्पन्न नहीं किये जा सकते, न ही अर्थ से व्यक्ति को तर्कसंगत बनाया जा सकता है। जबकि शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्ति की तार्किक एवं भावनात्मक क्षमता में अभिवृद्धि करना है -

'साहित्यसंगीतकलाविहीन:
साक्षात्पशु: पुच्छविषाणहीन:'।

शिक्षा व्यक्ति का समग्र विकास करने वाली होनी चाहिए अर्थात् उसकी भौतिक आवश्यकताएं पूर्ण हों मानसिक इच्छाएं तृप्त हों, व्यवहार में तर्कसंगत हों तथा उसके सभी के साथ आत्मीयता-पूर्ण संबंध हों।

यदि एक भी पक्ष उपेक्षित अथवा अपूर्ण रह जाता है तो जीवन की समग्रता व्यग्रता में बदल जाती है।

इतिहास के पन्ने वर्तमान की सबसे बड़ी पूंजी हैं। ये सिखाते हैं कि विगत समय में हमने दो सबसे बड़ी भूलें कीं, या तो हमने जीवन में अर्थ को सब कुछ मान लिया अथवा एक दौर में हमने अर्थ की पूर्ण उपेक्षा कर दी। परिणामत: एक ओर हमारे शासक अभिमानी और अहंकारी हो गये अथवा विदेशियों के हाथों पराजित हो गये। दोनों ही परिस्थितियों में देश का अहित हुआ। इसलिए शिक्षा में अर्थ की भूमिका तय करते समय 'अर्थ' की उपेक्षा भी न हो और न ही उसकी अति हो जाये। शिक्षा का एक छोर 'शरीर' (फिजिकल एग्ज़िस्टेंस) है तो दूसरा छोर 'आत्मा' (यूनिवर्सल एग्ज़िस्टेंस) है। यही गीता की भाषा में 'विज्ञान' और 'ज्ञान' है- ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानम् (गीता ७.२)। यही वेद की पुरानी भाषा में ब्रह्म और क्षत्र है- इदं मे ब्रह्म च क्षत्रञ्चोभौ श्रियमश्नुताम् (यजुर्वेद २२.१६)। यही सभ्यता और संस्कृति है-शरीर सभ्यता है संस्कृति आत्मा। वेदान्त की भाषा में कहें तो शरीर अर्थात् सत्त्व, रजस, तमस् और आत्मा अर्थात् सत्, चित्, आनन्द। इन दोनों ध्रुवों के मिलन से संसार बना है। एक अभ्युदय है तो दूसरा नि:श्रेयस्। 'अर्थ' केवल इसके शरीर पक्ष से जुड़ा है इसलिए शिक्षा के विहंगम व्योम का केवल एक भाग है।

शिक्षा का यह भारतीय मॉडल है। स्वार्थ और परमार्थ के बीच संतुलन ही सुख-समृद्धि का सूत्र है। यह भारतीय चिन्तन है। जीवन की ऐसी व्यापक समझ विकास का आधार होनी चाहिए। यदि हम अपने देश में इस मॉडल को स्थापित कर पाएं, तो पूरे विश्व के लिए अनुकरणीय उदाहरण बन सकेंगे। यही वस्तुत: वैदिक विरासत है और यही विश्ववारा संस्कृति होगी -

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा
(यजुर्वेद२२.२२)

❑ **सागरमाथा, ३० करणी उद्यान एनक्लेव, तारा नगर रोड, झोटवाड़ा-जयपुर-३०२०१२**

शब्द सेतु : रमेश थानवी जी!

❑

पिछले २ वर्ष बहुत क्रूर रहे हैं। कई अपने लेखक मित्र सगे संबंधी अचानक ही कोरोना काल में कालकव लित हो गये। अंतिम दर्शन तक भी नहीं कर पाये। लेकिन जब बुरा समय खत्म हो गया था, चारों तरफ महामारी से मुक्ति की हवा आने लगी थी, ऐसे समय रमेश थानवी जी का अचानक चले जाना विधाता की तरफ से क्रूरता की हद ही कही जा सकती है। मैं अचानक उनकी वेबीनार की श्रद्धांजलि सभा में भी सम्मिलित होने की हिम्मत नहीं कर पाया जैसे अंदर एक यकीन रहा हो कि अभी उनका फोन आएगा। कुछ शिकायत करेंगे। किसी लेख की बात करेंगे! गांधी के किसी विचार पर लंबी बात होगी! शिक्षा की स्थितियों पर तफसरा विशेषकर अपनी भाषा में पढ़ने-पढ़ाने के संघर्ष की। और लगता कि किसी सेमिनार का सा आनंद आ गया। उनका भी अनुरोध रहेगा कि जयपुर बहुत दिनों से नहीं आये और मेरा भी कि आपने दिल्ली मेरे घर आने का वादा पूरा नहीं किया। सचमुच जैसे घर का कोई बड़ा भाई चला गया हो!

शब्दों की दुनिया के माध्यम से ही २५ वर्ष पहले उनसे संवाद होना शुरू हुआ था। मैं रेलवे कॉलेज में बड़ौदा नियुक्त हुआ था और वही १९९६-९७ के आसपास अनौपचारिका पत्रिका पर नजर पड़ी। बच्चों के स्कूल में पीटीए की मीटिंग, पाठ्य पुस्तकों को उलटते-पुलटते हुए मेरे अंदर शिक्षा के मसलों के प्रति बेचैनी धीरे-धीरे जन्म लेने लगी थी। इस बीच में मैं महानगर में भी रह चुका था लेकिन बार-बार गांव की शिक्षा के बरअक्स पब्लिक स्कूलों की पढ़ाई के नकली वातावरण को देखता, शिक्षकों के व्यवहार, बच्चों की पिटाई, मां-बाप के ऊपर उनके होमवर्क का दबाव-यह सब स्थितियां मेरे अंदर एक विद्रोह पैदा कर रही थी। अनौपचारिका में छपने वाले लेखों में मुझे इसी विद्रोह की प्रतिध्वनियां सुनायी पड़ रही थीं। उन दिनों उसमें एक कॉलम होता था स्कूली बचपन के दिन, जिसे देखते ही दिमाग के अंदर अनंत स्मृतियां उमड़ने लगीं और मैंने लेख भेज दिया। तुरंत उनका फोन भी आया और अगले अंक में ही वह लेख छपा। इस लेख में रामासिन नाम के पेड़ का जिक्र था। हमारे यहां रामा सेन का एक झाड़ीनुमा पेड़ होता है। उन्होंने जानना चाहा कि इसका और कोई नाम होता है क्या? मुझे नहीं पता था । बस इतना याद है कि

❑
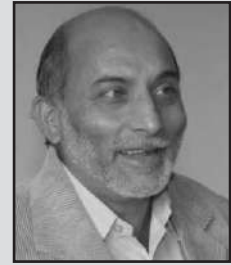
प्रेमपाल शर्मा

चिंतक, विचारक और सामाजिक सरोकार रखने वाले श्री प्रेमपाल शर्मा का थानवी जी से रिश्ता आज आत्मीयता, स्नेह और प्यार से भरा है। दो दशक से भी पुराना यह रिश्ता अनौपचारिका में प्रकाशित लेखों से अटूट है। जब भी थानवी साहब दिल्ली जाते, प्रेमपाल जी से जाकर मिलते। बच्चों के संबंध में दोनों एक ही धरातल पर खड़े हैं। दोनों की बेचैनी ने एक-दूसरे को और भी करीब लाकर खड़ा कर दिया।
श्री रमेश थानवी शिक्षकों के व्यवहार और मां-बाप का बालकों पर सतत दबाव बनाये रखने से निरंतर बेचैन रहते और उनकी अंतिम क्षणों तक चिंता करते रहे।
थानवी जी को शब्द सेतु की संज्ञा देते हुए प्रेमपाल जी कहते हैं-हमें उनके दिखाये रास्ते पर चलना है। इसकी हम भरसक कोशिश करेंगे। ❑सं.

वह कितनी तल्लीनता से एक-एक शब्द को देखते थे, महसूस करते थे । फिर तो जो सिलसिला शुरू हुआ वह पिछले दिनों तक चलता रहा जब उन्होंने हमारे शिक्षाविद् कृष्ण कुमार जी की किताब 'कुछ सत्य कुछ सुंदर' पर मेरा लेख 'शिक्षा विमर्श' से लेकर पुनः छापा। विस्तार से उस पर चर्चा भी हुई। शिक्षा के प्रति ऐसा था उनका समर्पण।

शिक्षा पर मैंने अपने अनुभव संसार को कुरेदते हुए कुछ-कुछ लिखा है और वह हिंदी पट्टी के दूसरे अखबारों-पत्रिकाओं में भी छपे हैं लेकिन जो स्नेह मुझे थानवी परिवार ने दिया वह मेरे लिए अमूल्य है। रमेश थानवी जी के बड़े भाई शिवरतन थानवी जी ने भी मेरी पीठ ऐसे ही थपथपायी। जनसत्ता का लेख हो, अनौपचारिका या राजस्थान पत्रिका, समयांतर का, जहां भी होता उनके लिखे नीले अंतरदेशी पत्र मेरे लिए थाती हैं। किसी भी अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कार से भी बड़े। न केवल यह परिवार बल्कि राजस्थान में मेरे शिक्षा विषयक लेखों के जितने मुरीद प्रशंसक पाठक हैं, उतने कहीं और नहीं। कई बार सोचता हूं कि कैसे एक-एक व्यक्ति का चरित्र, छवि, आचरण आपको उस पूरे क्षेत्र, प्रदेश और देश के प्रति प्यार जगा देता है। मैं और गहराई से सोचता हूं और अक्सर अपने सभी दोस्तों से इस बात का जिक्र करता हूं कि संभवत: आजादी के बाद राजस्थान ने जितने बेहतर शिक्षाविद् दिये, उतने हमारे बड़बोले उत्तर प्रदेश और बिहार ने नहीं। डॉक्टर दौलत सिंह कोठारी का योगदान किसी भी मंडल कमीशन के बीपी मंडल से कम नहीं है। एक वैज्ञानिक के रूप में, यूजीसी चेयरमैन के रूप में या सिविल सेवा परीक्षा और शिक्षा आयोग की उनकी सिफारिशें लोक जुंबिश के अनिल बोर्डिया, दिगन्तर संस्था, समयांतर, स्वयं रमेश थानवी जी, शिवरतन थानवी जी.. अनेक ऐसे नाम है जिनका शिक्षा जगत सदा ऋणी रहेगा।

अनौपचारिका शायद हिंदी की सबसे सुरुचिपूर्ण, सस्ती, सादा पत्रिका होगी लेकिन उस में छपे लेख चाहे गांधी के विचार हो, विनोबा के अनुभव हों या शिक्षा जगत में हो रहे नये से नये प्रयोगों की धमक, अनौपचारिक का के पन्नों पर पा सकते हैं। कृष्णमूर्ति, गिजुभाई बधेका से लेकर गांधी, प्रोफ़ेसर यशपाल, कृष्ण कुमार अपूर्वानंद, डॉक्टर कोठारी के चुन-चुन कर लेख अनौपचारिका में रमेश थानवी जी के प्रयत्नों से छपते रहे। क्या आप डॉक्टर दौलत सिंह कोठारी पर एकाग्र अनौपचारिका के विशेषांक को भूल सकते हैं? उसी अंक से मुझे डॉक्टर कोठारी की बहुत सारी किताबों आदि का पता चला और मैं आजाद भारत में उन्हें भारत रत्न से किसी भी हालत में कमतर नहीं मानता। यह अलग बात है कि हमारे लोकतंत्र में जो सरकारें बनीं शिक्षा के मसले पर कभी गंभीर नहीं रहीं। क्या मौजूदा सरकार की नयी शिक्षा नीति में लौट फिरकर डॉक्टर कोठारी के शिक्षा आयोग की ही बातों को नयी बोतल में पेश नहीं किया गया? यहां अपराध उन सरकारों का भी है जो संसद में डॉक्टर कोठारी की बातों से
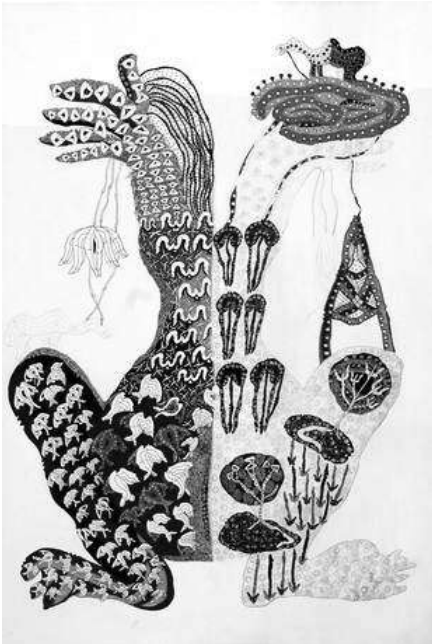
सहमत होते हुए भी राजनीतिक स्वार्थों के तहत उसे लागू नहीं कर पायीं। ऐसे और न जाने कितने अंक हैं जिनमें कवि मंगलेश डबराल की कविता, कवि गिरधर राठी का लेख, कुमार प्रशांत, ओम थानवी, रवींद्र नाथ टैगोर के महत्वपूर्ण लेख न छपे हों। उनका व्यवहार ही ऐसा था कि शिक्षा जगत से लेकर हमारे समय का बड़े से बड़ा लेखक कवि कहानीकार उनके आग्रह को मना नहीं कर सकता था। मेरे छोटे भाई ओमा शर्मा के भी कई महत्वपूर्ण लेख उन्होंने अनौपचारिका में छापे और वे स्वतंत्र रूप से संपर्क में आये। लगता है शिक्षा जगत की एक-एक चिड़िया पर उनकी नजर रहती थी। हम सब अब एक सूनेपन को महसूस कर रहे हैं। किसी लेखक के लिए किसी संपादक द्वारा लिखने के आग्रह से बड़ा सम्मान कुछ नहीं होता।

बीच में कुछ दिनों के लिए उम्र के दबाव में वे अनौपचारिका से शायद अलग हो गये थे लेकिन जिनका मन और मस्तिष्क हर क्षण शिक्षा की बेहतरी के लिए बेचैन रहता हो वह उससे दूर कैसे रह सकते थे। वे लौटे और सच कहूं तो पिछले दिनों से अनौपचारिका में एक नयी चमक पैदा हो रही थी। गांधी की पुस्तकों को उन्होंने छोटे-छोटे देशों में डिब्बों में हम सबको भेजा। पोथी घर की परिकल्पना हो या छोटे-छोटे बच्चों के लिए आयोजित आनंद शाला, लगता है रमेश थानवी जी में गांधी, गिजुभाई, विनोबा जैसे दिग्गजों के अंश गूंजते थे।

प्रौढ़ शिक्षा के अनौपचारिका का भवन जयपुर में है। वहां मेरा केवल दो बार जाना हुआ और उसकी स्मृति अभी भी मेरे जेहन में है। कितना खूबसूरत प्रांगण है। मुझे अफसोस हो रहा है कि कुछ तो कोरोना की वजह से और कुछ दिल्ली के महानगर में रहकर टेढ़ा-टेढ़ा चलने की आदतों की वजह से मेरा जयपुर जाना नहीं हो पाया। बुलंदशहर के मेरे गांव दीघी में मैंने अपने घर का पुनर्निर्माण कराया है। पिछले कई महीनों से मैं इसकी प्रगति रिपोर्ट उनको देता था और वह बार-बार यही कहते थे कि अगली बार मैं आपके गांव जरूर चलूंगा। जो पुस्तकालयों की शुरुआत हुई है उसे देखेंगे। लेकिन मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी कि उनका साया ऐसे अचानक उठ जाएगा! ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे! और मेरे अंदर से आवाज आ रही है कि आपके दिखायें रास्तों पर हम चलने की भरसक कोशिश करेंगे थानवी जी! नमन श्रद्धांजलि ! ❑

९६ कला विहार अपार्टमेंट, मयूर विहार फेस वन, दिल्ली ९१ .

मोबाइल ९९७१३ ९९०४६

❑
अव्यक्त जी

हिमाचल प्रदेश के अव्यक्तजी चिंतक हैं, विनोबा- गांधी विचारक हैं। वे विश्व मानवता की दिशा में प्रयासरत हैं और सहजीवन में उनकी अटूट आस्था है। उनका कहना है कि आज सभी गृहस्थ दिन में २४ घंटों में कम से कम ५ मिनट का समय अवश्य निकालें और संतवाणी की कोई भी पोथी खोलकर एक पृष्ठ पढ़कर अवश्य सुनाएं।
अव्यक्ति जी थानवीजी को एक फरिश्ते और भगवान के भेजे देवदूत के रूप में देखते हैं। थानवी जी से उनका परिचय सोशल मीडिया पर हुआ। थानवी जी से फोन पर हुई पहली बातचीत ही इतनी आत्मीय थी कि वे उनके अपने हो गये थे। थानवी जी से मिले प्यार को संत कबीर 'शब्द मिलावा' कहते थे-प्रस्तुत है अव्यक्त जी का यह आलेख।
❑ सं.

आपने जीवन भर प्रेम ही बाँटा, प्रेम को ही जिया

❑

गांधीजी और विनोबा के मार्गदर्शन में जबसे हमारी जीवन-साधना चली है, तबसे हम लगातार ऐसे मनुष्यों से जुड़ते ही चले गये हैं जो कई बार भगवान के भेजे दूत सरीखे लगते हैं। प्रातः स्मरणीय रमेश थानवी जी ऐसे ही एक देवदूत, एक फरिश्ता सरीखे थे हमारे लिए। सोशल मीडिया पर वे लंबे समय से हमसे जुड़े थे, लेकिन अचानक एक दिन जयपुर से भाई उपेन्द्र शंकर जी का फोन आया कि आप रमेश थानवी जी को तो जानते ही हैं न! वे आपसे फोन पर बात करना चाहते हैं, क्या मैं आपका नंबर उन्हें दे सकता हूँ?

थानवी जी से पहली ही बातचीत इतनी आत्मीय थी कि ऐसा लगा मानो हम सब एक-दूसरे को जाने कबसे जानते हों। इतनी एकात्मकता, इतनी एकात्मकता कि बात करते हुए जी ही नहीं भर रहा था। लोगों से इतनी सहृदयता से जुड़ जाना मानो उनके स्वभाव में ही था। उनके साथ बातचीत करते हुए अपने सामान्य सुख-दुःख का परिप्रेक्ष्य भी इतना व्यापक हो जाता था कि लगता था वे हमेशा ही पूरे जगत के साथ एक हो कर जीते हैं। वे इतने प्रेममय होकर रहते थे कि मानो प्रेम को ही जीते थे। वे प्रेम की साक्षात मूर्ति थे। उनसे बात हो गयी तो पूरा दिन उन्हीं के चिंतन में बीतता था। उन्होंने ऐसा कहा, वैसा कहा, कितना सुंदर कहा, ऐसी हिदायत दी, ठहाके मारते हुए ऐसी मीठी डाँट लगायी, यह सब हमारे पारिवारिक सत्संग का प्रसंग बन जाता था।

प्रायः गांधीजी और विनोबा का प्रसंग छिड़ जाता था। विनोबा के ग्रंथ 'गीता-प्रवचन' और 'शिक्षण-विचार' को तो मानो उन्होंने आत्मसात ही कर लिया था। कहते थे कि 'मेरे पिताजी जिन्हें हम सब 'माटसाब' ही कहते थे, उन्होंने किशोरावस्था में ही मुझे गीता-प्रवचन पढ़ने को दे दिया था और उस पुस्तक ने मेरी जीवन-दृष्टि ही बदल दी थी।' थानवी जी के शिक्षा संबंधी चिंतन पर भी विनोबा के ग्रंथ 'शिक्षण-विचार' का बहुत प्रभाव था। वे प्रायः कहते थे कि अव्यक्त जी, शिक्षा-व्यवस्था के स्तर पर हमसे बड़ी भूलें हुई हैं जिनका खामियाजा हमारे नौनिहालों को, किशोर-किशोरियों को और युवाओं को भुगतना पड़ता है। उनकी पीड़ा देखी नहीं जाती। हम सबका दायित्व है कि उनका बचपन और यौवन सदा आनंद

में खिलखिलाता रहे। उनकी 'आनंदशाला' के पीछे भी यही प्रेरणा कार्य कर रही थी।

भावनाओं से भरा हुआ, प्रेम और उत्फुल्लता से भरा हुआ ऐसा मनुष्य तो देवदुर्लभ ही है। मुक्तकंठ से एकदम बाल सुलभ ठहाके लगाते हुए प्रायः कहते थे, अव्यक्त जी, मैं तो चिरयुवा हूँ, चिरयुवा। आप मुझे बुड्ढा तो नहीं समझते हैं न? फिर उसके बाद एक ही धुन लगी रहती थी– अब तो कोरोना भी जा रहा है, महाराज, पधारो म्हारो देस, पधारो म्हारो देस। जाने से कुछ ही दिन पहले सुबह–सुबह फोन पर लगभग घंटे भर बात की। बोले–'भतीजे ओम के घर हूँ। यहाँ खूब सेवा हो रही है मेरी।' फिर ओम जी से भी अपने ही फोन पर मेरी बात करायी।

कबसे कह रहे थे कि अव्यक्त जी, मौसम खुलने दीजिए। हवाई जहाज से ही सही लेकिन हिमाचल आएंगे आपसे मिलने। अब ट्रेन, बस और मोटरकार में उतना चला नहीं जाता। मनीषा जी और माशा से मिलने आना है मुझे। उन्हें भी जल्दी से 'आनंदशाला' लेकर आइए। एक दिन कहने लगे कि समिति का वनौषधि उद्यान इस बार खूब गुलज़ार हुआ है। जो चीकू का पेड़ कभी फलता नहीं था, उसने भी हमारी सेवा से प्रसन्न होकर फल दिये हैं इस बार। चित्रक, कालमेघ, पुनर्नवा, काला धतूरा, निर्गुण्डी, चिरमी, दमाबेल, सुदर्शन, पारस पीपल और न जाने कितनी ही वनौषधियों के नाम एक साँस में गिना जाते थे। कहते थे आप आइएगा तो देखिएगा कि कैसे ये सब लहलहा रहे हैं।

इस बार की 'अनौपचारिका' के लिए फिर से उन्होंने लेख मंगाया था। लेख पढ़कर बोले– इस लेख में थोड़ी कठोर ही सही, लेकिन सब मेरे मन की बात लिखी है आपने। लंबा लेख है, लेकिन प्रेम जी (वरिष्ठ संपादक प्रेम गुप्ता जी) से बोलूंगा कि कोई काट–छाँट नहीं हो इसमें।

समाज को जोड़ने के अपने मिशन का नाम उन्होंने 'मिशन ताना–बाना' रखा। 'घर–घर में पोथी घर' जैसे उनके अभियान ने हम सबको बहुत प्रभावित किया। इस पर उनको एक सुंदर व्यक्तिगत चिट्ठी लिखी। वह चिट्ठी उन्हें इतनी अच्छी लगी कि 'अनौपचारिका' में ज्यों–का–त्यों छाप दिया। बोले–हम तो अधिकार से छापेंगे, आपको जो करना है, कर लीजिए।

'अनौपचारिका' में बाबा विनोबा के वक्तव्यों का उद्धरण इतनी खूबसूरती से छापते थे। हर बार अनौपचारिका का पहला पेज किसी संत की अद्भुत वाणी को समर्पित होता था। एक बार माशा ने संत दादू दयाल पर कोई वीडियो बनाया। तो जवाब में अगले ही दिन संत दादू दयाल की वाणी का एक अद्भुत संकलन ढुंढ़वाकर डाक से भिजवा दिया जो कई दशक पहले उन्होंने स्वयं समिति से सुंदर कलेवर में प्रकाशित करवाया था।

हर बार फ़ोन पर कहते थे– अव्यक्त जी कुछ करो, कुछ करो महाराज। भारत में
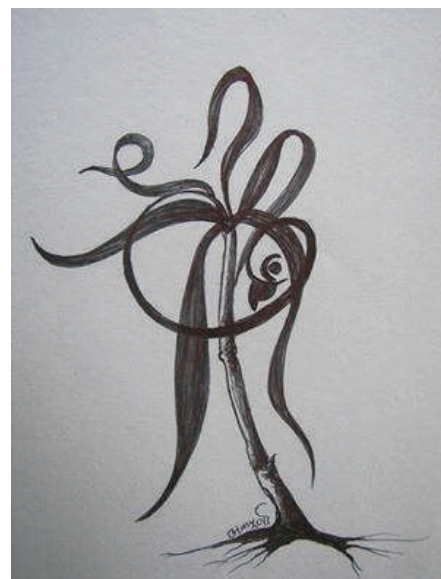
सबके दिलों को एक बार फिर से जोड़ना है। मैं समिति से ऊर्जस्वी युवाओं को जोड़ रहा हूँ। यह सब कहते थे। समाज को लेकर इतनी करुणा, इतनी बेचैनी और देशभक्ति विरले ही किसी बुजुर्ग के हृदय में देखी है। हम सभी स्तब्ध हैं। अभी बहुत समय लगेगा इससे उबरने में। रमेश थानवी जी से जो भी एक बार प्रेम से मिला, वह उन्हीं का होकर रह गया। इसलिए हमारी ही तरह की हज़ारों-हज़ार कहानियाँ उन हज़ारों मनुष्यों के पास होंगी जो उनसे कभी मिला, उनसे जुड़ा।

भारत अभी जिस दौर से गुजर रहा है, उसमें थानवी जी जैसे साधारण बाने में असाधारण मनुष्यों की बहुत जरूरत थी। मनीषा जी के विचार मैंने और अव्यक्त जी ने जब गांधीजी और विनोबा के एकादश-व्रत पर आधारित यूट्यूब चैनल शुरू करने की योजना अपने सन्मित्रों के सामने रखी, तो उन्होंने हनुमान जी की तरह आगे बढ़कर सारा बीड़ा उठा लिया। देशभर के अपने समविचारी साथियों को फोन करके अधिकारपूर्वक आदेश देते कि अव्यक्त जी और मनीषा के खाते में दक्षिणा भेजो। उनका व्हाट्सएप का स्थायी स्टेटस होता था-'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।'और यही परहित वास्तव में उनके जीवन का लक्ष्य भी था जिसके लिए वे अंतिम समय तक पूरी युवासुलभ ऊर्जा से प्रयासरत रहे।

'सबके गांधी' शृंखला से जो गुटका आकार की सुंदर पुस्तिकाओं का सेट उन्होंने बनवाया वह जब हमें भेजा तो कहा कि आप जिस किसी को भी यह सेट भिजवाना चाहें, उनकी सूची नाम, पता और फोन के साथ मुझे भेजें, उन सबको प्रेमपूर्वक भिजवाऊंगा। किसी से बिल्कुल भी इसके लिए राशि नहीं लूंगा, लेकिन जो समाज को ज्यादा देने की स्थिति में होगा, उससे प्रेम-निवेदन करके ज्यादा वसूली करूंगा। यही उनका गांधीवादी समाजवादी तरीका था। विनोबा ने इसे ही सामाजिक परस्परावलंबन कहा है। वे इस परस्परावलंबन को इतने सहज और उनमुक्त तरीके से जीते थे कि हर कोई उनका मुरीद हो जाता था।

एक बार कहने लगे कि अस्वाद के व्रती होकर भी गांधीजी ने अपने आश्रम में आटे और गुड़ की 'सुखड़ी' बनवाकर सबको खिलवायी थी मिठाई के रूप में। हमने तो पहली बार इस मिठाई का नाम सुना था।

तो फिर मैंने भी ठेकुआ (एक साधारण देसी पकवान) अपने हाथों से बनाकर डाक से जयपुर भेज दी। कूरियर वाला उस पार्सल को पड़ोसी के घर छोड़ गया। हम उन दिनों गोवा यात्रा पर थे। पार्सल पाकर तुरंत फोन किया कि अव्यक्त जी, मनीषा माता का भेजा प्रेम प्रसाद मिल गया है मुझे और इसमें कुछ बहुत ही खास चीज है। इसे खोलकर फिर तुरंत फोन मिलाता हूँ। घर आकर अत्यंत सावधानी से इसे खोला और फोन पर देर तक जोरदार ठहाका लगाते रहे। फिर उसी ठहाके के साथ कई बार कहते रहे-'खुल गया सिमसिम, खुल गया सिमसिम'। इतने प्रसन्न हुए कि
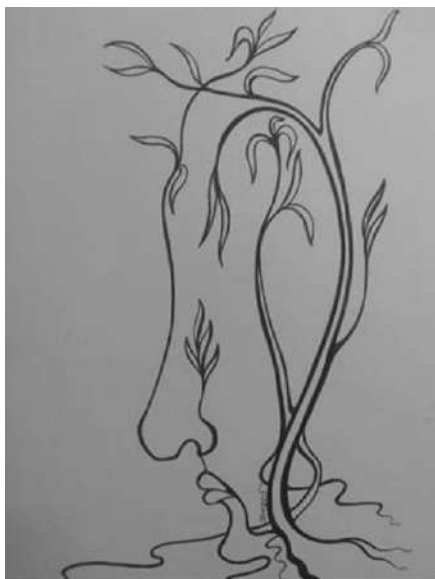
कहने लगे पूरे जयपुर को न्यौता देकर उसका कतरा-कतरा बाँटकर खाऊंगा। ऐसा पागल प्रेमी हमने तो नहीं देखा था।

हम सबके प्रिय थानवीजी। आप जहाँ कहीं भी हों, इतना जान लीजिए कि हम सब आपको बहुत प्रेम करते थे। बहुत प्रेम। क्योंकि आपने जीवनभर प्रेम ही बाँटा, प्रेम को ही जिया। विनोबा कहते थे कि प्रेम और विचार से बढ़कर कोई शक्ति दुनिया में नहीं है। तो प्रेम और विचार दोनों ही शक्ति हमने आपमें प्रकट होते हुए देखी। आप शांति से गये। चलते-फिरते, ठहाके लगाकर हँसते हुए गये। आखिरी बार भी फोन पर आपने मीरा का ही पद गाया। तो ऐसे संतवाणी गाते हुए आप गये।

प्रेम करते हुए, प्रेम ही बाँटते और फैलाते हुए हम भी किसी दिन सिधारें तो आप ही की तरह एकदम शांति से। मीरा की भाँति ही कबीर भी आपको विशेष प्रिय थे। आप अपने प्रेम और अपनी करुणा से उसी सत्य में समा गये जिसकी बात संत कबीर करते थे। अब तो शायद उसी लोक में कभी मिलना हो सके तो हो सके। लेकिन प्रायः स्मृतियों में आपसे वह मिलन होता ही रहता है जिसे संत कबीर 'शब्द मिलावा' कहते थे। उन्हीं संत कबीर की सत्य वाणी आपको खूब, खूब प्रेम के साथ समर्पित करते हैं-

'हम वासी वा देस के,
जहाँ गगन धरण दुइ नाहिं।
शब्द मिलावा हो रहा,
देह मिलावा नाहिं।।'

मनीषा, माशा और अव्यक्त आपकी पुण्य स्मृतियों को बारंबार प्रणाम करते हैं।❑

द्वारा-श्री कैलाशचन्द, ग्राम-कंडबाडी
(कलहोली माता मंदिर मंदिर के निकट)
पोस्ट-कमलहैड, तहसील-पालमपुर,
जिला-कांगडा-१७६०६१ (हिमाचल प्रदेश)
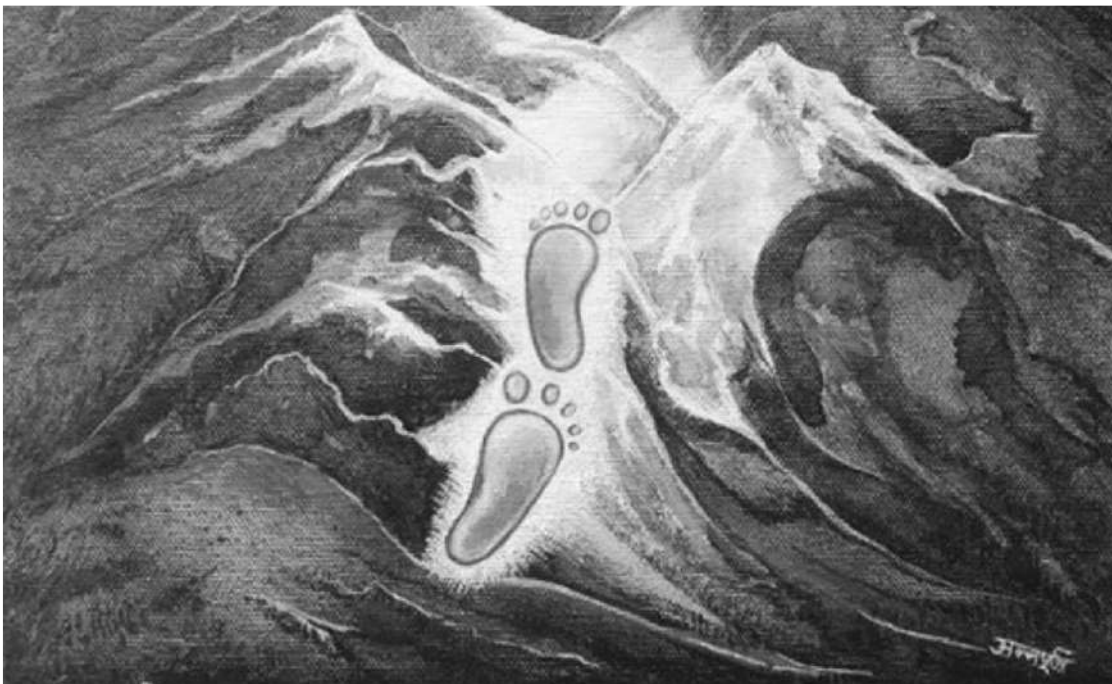
रमेश थानवी : लोक–संस्कृति के पारखी

❑

❑
डॉ. सुनीता तंवर

डॉ. सुनीता तंवर अजमेर प्रौढ़ शिक्षण समिति में लंबे समय से अपनी सेवाएं दे रही हैं। इन्होंने जन शिक्षण संस्थान में भी कई वर्षों तक कार्य किया है। रमेश थानवी से आपका परिचय वर्ष ९० के दशक में हुआ था। वर्तमान में राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति की सचिव का कार्यभार संभाल रही हैं। इसका श्रेय वे सरल, सहज और सौम्य स्वभाव के धनी श्री रमेश थानवी को देती हैं। वे उन्हें लोक–संस्कृति एवं कला का पारखी मानती हैं। श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए सुनीता तंवर कहती हैं कि थानवी जी हर एक व्यक्ति जो उनके संपर्क में आता उसकी कमजोरी पहचान कर, उसके प्रेरणा एवं मार्गदर्शक बन जाते। ❑सं.

आदरणीय श्री रमेश थानवी सर! राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के अध्यक्ष, सुविचारक, गांधीवादी विचारक, कई भाषा और बोलियों के ज्ञाता, एक दिन इस तरह हमें छोड़ जाएंगे विश्वास नहीं हो रहा है। मेरा आपसे मिलना वर्ष १९९७ में हुआ था, जब मैं अजमेर प्रौढ़ शिक्षण समिति, अजमेर में डी आर यू में काम करती थी। क्योंकि पहले सभी प्रशिक्षण एसआरसी करवाती थी, मेरी रुचि होने के कारण समिति के सभी सदस्यों से भी मिलना–जुलना होता, फिर साधारण सभा की नामजद सदस्य बनी और फिर कार्यकारिणी सदस्य। एक दिन सचिव महोदय श्री अरविन्द ओझा के चले जाने से थानवी सर का फोन आया कि यह जिम्मेदारी तुम्हें दी जा रही है, यह निर्णय सभी सदस्यों का भी है। मैंने बहुत मना किया, मैं बहुत जूनियर हूं, मुझसे अनुभवी बड़े और भी सम्मानित सदस्य हैं, लेकिन उनकी तर्क शीलता का भी कोई सानी नहीं था। मैं हार गयी और यह जिम्मेदारी ग्रहण की। हमेशा फोन पर सचिव महोदय बोलते तो मैं शर्मसार हो जाती। वे मुझ से कहा करते–कहो! क्या अनुमति है हमारे लिए? इतनी सरलता, सहजता, अपनापन यही गुण उनका विशिष्ट गुण था। हमेशा फोन पर ठहाका लगा कर हंसते।

उन्हें पता होता था कि किस व्यक्ति की क्या योग्यता है, बस उसी को संवारने में लग जाते। उनके साथ रहकर कमजोर से कमजोर व्यक्ति भी ताकतवर बन जाता क्योंकि वे लेखक थे। यदि किसी को कुछ लिखना नहीं भी आया तो भी उन्होंने हमेशा उसे प्रेरणा दी। मुझ से हमेशा कहते–तुमने आर्य समाज पर पीएचडी की है कुछ अनौपचारिका के लिए लिखो। हमेशा प्रेरणा देते रहते। अजमेर के घसेटी मोहल्ला की कचोरी और कलाकंद की हमेशा चर्चा करते।

राजस्थान के सभी प्रौढ़ शिक्षण समितियों के सुचारु संचालन के लिए जीवन पर्यन्त प्रयासरत रहे। उनके पास कितने पुराने लोगों के फोन नंबर, उनकी कहानियां, उन्हें सब पता था कौन क्या लिख रहा है?कौन कैसा लिख रहा है? क्या काम कर रहा है? किसमें क्या गुण छुपा है? सबको जोड़ना और जोड़ कर रखना उनके व्यक्तित्व का प्रमुख गुण था।

क्योंकि वे जमीन से जुड़े व्यक्ति थे इसलिए उन्हें लोक–गीत, लोक–संस्कृति, लोक–गायक, लोक–मांडना

के पारंगत व्यक्ति आदि को ढूंढना, सर्च करना, उनसे मिलना, उनसे बात करना, उन्हें जीवंत बनाये रखना उनका प्रिय शौक था।

कला, संस्कृति, फोटो, नृत्य, गीत, गजल, भजन, भोजन, लेखन, पेंटिंग सबको अपने ताना-बाना में जोड़ लिया था। आनंदशाला में गोते लगाते वे कितना सहज महसूस कर रहे थे। बच्चे बन गये थे। नित नये प्रयोग-खेती में भी अपनी अभिरुचि से सबके मन में एक विचार का पौधा लगा गये। जिन पौधों के नाम नहीं पता थे, उन्हें लगाकर भी दिखा दिया। उनका बड़प्पन, विनम्रता, आत्मीयता, गरिमापूर्ण जीवन, उनका सादा जीवन अविस्मरणीय रहेगा।

मैं फोन करते हमेशा संकोच करती। मुझे लगता कि व्यस्त होंगे या आराम कर रहे होंगे, फिर भी मैं हिम्मत करके फोन करती। मुझे नहीं पता यह अंतिम फोन होगा। १० तारीख को २.५४ पर फोन किया तो बोले, मेरी तबीयत ठीक नहीं है-मैं अस्पताल जा रहा हूं। उनके अंतिम शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। मैं उन्हें शत शत नमन करती हूं। प्रणाम करती हूं। ❑

ई-२०७, शास्त्री नगर, अजमेर-३०५००१
मो.-९४१४३४६४४५

एक चिट्ठी सर के नाम

❑

❑
अपर्णा मक्कड़

अपर्णा मक्कड़ अर्थशास्त्र में पीएचडी हैं और व्याख्याता भी। लेकिन वे अपने आप को कंपाउंडर कहलाना अधिक पसंद करती हैं। एक प्रयोगधर्मी के रूप में पगडंडी बनाते चलना उन्हें अधिक रास आता है। आजकल वे वेस्ट पर एक स्टार्टअप का नेतृत्व कर रही हैं। अर्थशास्त्र में नये बीज बोना उनकी कर्मभूमि बन गया है। अपर्णा जी के लिए थानवी साहब चिड़ियों की चहचाहट हो गये है। वे कहती हैं कि थानवी साहब प्रकृति की गोद में समा जरूर गये हैं लेकिन कलरव के रूप में उनके साथ हैं। इस आलेख में उसी रस में भाव की अनुगूंज है। प्रस्तुत चिट्ठी के माध्यम से हम पाठक भी थानवी साहब के समग्र व्यक्तित्व के कई पहलुओं को, नये आयामों को जान सकेंगे और देख सकेंगे।❑ सं.

परम आदरणीय सर

आज भी याद है आपसे पहली मुलाक़ात – मैं २०१० में समिति में आपसे मिलने आयी थी। मां की बहुरंगी साड़ी पहने हुई थी और कॉलेज बस से झालाना डूंगरी ही उतर गयी थी। आपकी आँखों में मेरे लिए उत्सुकता भी थी और नेह भी।

आपने मुझे अनौपचारिका की ढेर सारी प्रतियां भेंट कीं। हर अंक आपकी स्नेहिल सौगात था और बहुमूल्य था। मैंने बातों-बातों में आपको बताया कि आपके पड़ोसी श्री आर जी सोनी बीकानेर के दिनों से हमारे पारिवारिक मित्र हैं। आपने चुपचाप सुन लिया। घर जाकर आपने सोनी साहब से हमारा ज़िक्र किया और अगले दिन प्रफुल्लित होकर मुझे बताया कि सोनी साहब ने इस संबंध में आपसे कितनी बातें कीं। इस मधुर प्रसंग की कड़ी हमारे नव सृजित रिश्ते को पुख़्ता कर गयी।

आपने मुझे नेहरू युवा केंद्र की ट्रेनिंग को लीड करने के लिए कहा। मैं तो तलाश ही रही थी कि सामाजिक चेतना को सींचने का मौका मिले। सो लपक कर तैयारी शुरू कर दी। ग्रामीण युवाओं के साथ संवाद का यह मेरे जीवन में पहला अवसर था। आप प्रमुदित थे। हमारे संबंधों में नये आयाम जुड़ते चले गये। मैंने उत्साह से आपको बताया कि मैं अपने कॉलेज में न्यूज़ लैटर की सम्पादिका रही हूँ। आपको अपना काम दिखाऊं? आपने हामी भर दी। अगले दिन मैं सारे अंक ले आयी और मेज पर फैला दिये। आपने उनकी ओर एक नज़र देखा, कुछ पन्ने पलटे और रुष्ट होकर कहा, अपर्णा, तुमने पान की दुकान के लिए पोस्टर बनाये हैं? तुमने गधा मज़दूरी की है! मैं अवाक् रह गयी। डिज़ाइनर सम्पादिका होने की ख़ुशी काफूर हो गयी। कुछ समझ नहीं सकी, पर आपके शब्द समंदर की लहरों की तरह मेरे मन के तट पर आते रहे, भिगोते रहे।

कुछ बरस बाद उन शब्दों का मर्म जाना कि प्रकाशन में स्पेस का ही सौंदर्य है। वही एक पुस्तक को पाठक के मनोनुकूल बनाता है। हम अनाड़ी जो न्यूज़ लैटर को इतना रंग-बिरंगा बनाते थे, उससे पठनीयता घटी। काली-सफ़ेद अनौपचारिका का संतुलित स्पेस कितना मनोहारी लगता था। काश! आपसे पहले मिली होती तो ऐसी मूर्खता पूर्ण डिजाइनिंग नहीं करती!

आपकी दृष्टि मुझमें कुछ और संभावनाएं देख रही थी। आपने मुझसे अपनी क्लास के अनुभव लिखने को कहा। मैं हिचकिचायी, पर लिखना आरम्भ

किया। एक शिक्षिका पहुंची अटलांटिक महासागर के किनारे जहाँ एक अश्वेत अमरीकी न्यूरो सर्जन डॉ. बैन कार्सन अपने जादुई हाथों से नये कीर्तिमान रच रहे थे। उनकी आत्मकथा 'गिफ्टेड हैंड्स' उन्हीं दिनों मैंने पढ़ी ही थी। अपनी क्लास के तजुर्बेउनकी जीवन यात्रा के समकक्ष तुच्छ जान पड़े। कागज़-कलम का फैसला आत्मकथा के पक्ष में हुआ। आपने भी अनुमोदन किया। अनुवाद आरम्भ हुआ। आपने तय किया कि हम कुल तीन किश्तें छापेंगे। डॉ. बैन कार्सन के मुस्कुराते चेहरे का चयन आपने अनौपचारिका के मुखपृष्ठ के लिए किया - उनके सुन्दर, अनुकरणीय जीवन ने आपके संपादक मन को मोह लिया था।

आपके आग्रह पर लेखन का सिलसिला जारी रहा। आपके अभिन्न मित्र श्री अनिल बोर्दिया यूनेस्को के एविसेना पुरस्कार से नवाज़े गये थे। आप चाहते थे कि मैं एविसेना पर खोज करके एक आलेख लिखूं। मेरी भाभी कीमोथैरेपी से गुज़र रही थीं और मेरा उनके पास गुड़गांव जाना ज़रूरी था। आपने मुझे पूरी सहूलियत दी। किन्तु तब भी मैं आलेख को नियत समय-सीमा में नहीं समेट पायी। आपने धैर्य रखा और कागज़ - कलम ने ग्यारहवीं शताब्दी में मध्य पूर्व में जन्मे एक विलक्षण व्यक्तित्व को पाठकों तक पहुंचा दिया। आप बहुत खुश थे। मैं संतुष्ट थी भी, नहीं भी क्योंकि छपते - छपते एविसेना की जो ऊंचाई मैंने जानी, उसे मैं शामिल नहीं कर सकी थी।

मैंने मणिपाल विश्वविद्यालय जॉइन कर लिया। आप चाहते थे कि मैं श्री लक्ष्मीधर मिश्रा द्वारा बंधुआ बाल श्रमिकों पर लिखी पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करूँ। वे आपके परम मित्र थे और एक सहृदय प्रशासक भी। मैंने बारम्बार कोशिश की पर, नौकरी के चक्रव्यूह में उलझा मन कागज़ - कलम से मित्रता निभा नहीं पाया। आप प्रतीक्षारत रहे, मैं ही हार गयी।

आपने पूर्णिमा जी को दिल्ली से आमंत्रित किया कि वे आयुर्वेद के सिद्धांतों पर 'सेहत और स्वाद' की कार्यशाला करें। पांच दिन का आयोजन था। मैंने तय किया कि दिन के पूर्वार्द्ध में पढ़ाऊंगी, उत्तरार्द्ध में समिति आकर भोजन की बारीकियों का आनंद लूंगी। बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा! मणिपाल के प्रशासन ने पूरी छुट्टी स्वीकृत कर दी। मैं कार्यशाला में शरीक हुई। पके घीया का अचार बनाना सीखा और पड़ोसियों को भी खिलाया। आपके सान्निध्य में कौन-सा रस था जिसने हमें भावविभोर नहीं किया?

आप भक्त धन्ना जाट के गांव धुआं कलां जाना चाहते थे। मुझे भी निमंत्रण मिला। हम खुश - खुश रवाना हुए। कितना शांत गुरुद्वारा है उस स्थल पर जहाँ धन्ना जाट से मिलने गुरु गोविन्द सिंह जी पधारे थे। कैसी सुंदर पाषाण प्रतिमा उकेरी गयी है धन्ना जी की। हम निःशब्द उन्हें महसूस करते रहे। राज्य सरकार द्वारा बनाये गए स्मृति - स्थल में दीवारों पर लिखी उनकी बंदगियों पर आप कितने विस्मय-विमुग्ध थे। एक साहित्यकार और ईश्वर अनुरागी शब्दों के सौंदर्य के पार अव्यक्त में खो सा गया था।

रमेश थानवी
साहित्यकार एवं शिक्षाविद

बसंत पंचमी
12-2-2016

मां कीमोथैरेपी से गुज़र रही थीं तो भक्ति में एकाग्र होती जा रही थीं। मिलना-जुलना नहीं चाहती थीं। आपने आने की इच्छा ज़ाहिर की। मैंने मां से अनुमति ली। उन्होंने आपके लिए सहर्ष हां कर दी। आपका और उनका एक सहज आत्मीय नाता तो था ही। अब उनके घने बाल झड़ चुके थे। सेहत अस्त हो रही थी किन्तु इबादत का लावण्य उनके चेहरे पर था। आप सावधानी बरतते हुए आये। आपसी संवाद में राम सिमरन की ऐसी रस-वर्षा हुई कि हम सब भीग गये।

मां को विदा देने तो आप आये ही थे। पापाजी और मेरे बड़े भाई का परिवार स्वास्थ्य में कुछ मुश्किलों का सामना कर रहा था। आप उन्हें साथ लेकर जवाहर सर्किल पर एक आयुर्वेदाचार्य के पास कई बार गए। सही जगह से औषधियां भी दिलवायीं। हम सब मान कर चलते थे कि आप हैं न!

मैं अपने ऊर्वर खयालों को एक स्टार्टअप का आकार दे रही थी। बहुत से नाम सोचे, पर बात बनी नहीं। मां मोरारी बापू की रामकथा सुनती थीं और वे 'संवाद' पर बोल रहे थे। यह शब्द मुझे ठीक जान पड़ा। आपको फ़ोन किया और इस शब्द को पिरोते हुए एक नाम की गुज़ारिश की। आपने थोड़ा रुककर कहा कि 'संवाद-सेतु' रख लो। मैं उछल पड़ी। यही नाम रजिस्टर हो गया। कुछ साल बीत गये। मैंने तय किया कि हम वेस्ट का सदुपयोग कर उत्पाद बनायेंगे। एक दिन समिति में आपके सहपाठी श्री हुनमान और उनके बेटी-दामाद बैठे हुए थे। आपने मेरा परिचय कराया-अपर्णा 'कचरे से कंचन' बनाती है। मैं आपके शब्द-शिल्प पर मुग्ध थी। आप मेरे रचना संसार में अमिट हो गये।

सर, आप चाहते थे न कि समिति में फोटोग्राफी पर एक उम्दा कार्यशाला आयोजित हो। तीन महीने की तैयारी के बाद १ जनवरी २०२२ को एक सप्ताह की चित् छाया आपके उद्बोधन से आरम्भ हुई। हम २० प्रतिभागी थे और एक वटवृक्ष की मानिंद आप हमारे संरक्षक। आपको याद है न कि कार्यशाला के छठे दिन कई काम करने थे ... हम जुट गये। रात कब हो गयी, पता ही नहीं चला। घर जायें या काम संपन्न करें, यह दुविधा मौसम ने हल कर दी। उस रात छायी जबर्दस्त धुंध में ड्राइव करने से बेहतर था कि हमारा समूह मनोयोग से अपना लक्ष्य पूरा कर ले। मैंने रात पौने दस बजे आपको कॉल किया और अनुमति ली कि हम ५ लोग आज समिति में ही रुक जायें? आपने मीठी डांट पिलायी। मुकेश जी हलवाई को नींद से जगाकर हम सबके लिए भोजन बनाने को कहा। चौकीदार जी से कहा कि हमारे लिए रजाई-गद्दों की व्यवस्था करें। तड़के ४ बजे तक हम मोर्चे पर डटे रहे। थोड़ी नींद के बाद सुबह कार्यशाला के रणक्षेत्र में फिर आ पहुंचे। सोचा था कि घर स्नान के लिए लौटेंगे, पर नहीं हो सका। चित् छाया के समापन की तैयारी हमारी बाट जोह रही थी। दिन में आप जब समिति आये तो हमारे रात्रि कर्म-यज्ञ के प्रति आपकी प्रसन्नता छलक रही थी। आपने सबको उत्साह से बताया कि हम कितने अच्छे बच्चे हैं!

मैं आपकी मुदिता को और बढ़ाना
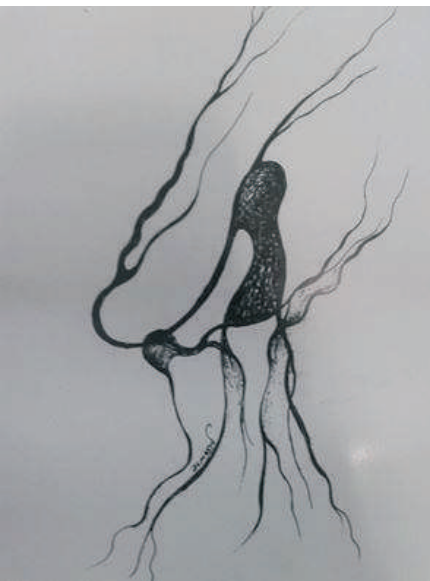
चाहती थी। एक दिन पहले के सत्र में सूत्रधार श्री हिमांशु व्यास ने अपने व मित्र कुमार विश्वास द्वारा खींचे, फ्रेम में मढ़े चित्रों को हॉल में डिस्प्ले किया था। उन्होंने हम सब प्रतिभागियों को एक दिलचस्प होमवर्क दिया था कि सुरुचिपूर्ण ढंग से रखे गये उन फोटो को गौर से देखें। एक को लिखने के लिए चुनें। हम सबने कहना माना। कार्यशाला में खूब रस-वृष्टि हुई। मैं अपना लिखा आपको पढ़ाने के लिए कक्ष में आयी। फोटो के साथ लेखन की एकरूपता ने आपके मन को छू लिया। आपने चाहा कि यह आलेख अनौपचारिका में छपे। आपके पीठ थपथपाने से बेहतर इनाम मेरे लिए कुछ नहीं था किन्तु आज आपकी इच्छा का आदर कर रही हूँ।

जब - जब कुछ नया लिखूंगी, नज़रें आपको तलाशेंगी। संतोष भी होगा कि वह कर रही हूं जो आपको बहुत ख़ुशी देगा। हिंदी की सेवा मेरा और आपका साझा सपना रहा है न।

आपकी अनंत की यात्रा आपको शिवोऽहं तक ले जाये!❑

सादर, सस्नेह, अपर्णा

१२४ आनंद नगर, सिरसी रोड, जयपुर – ३०२०१२

चित् छाया के लिए लिखा आलेख

मां

❑

शरद ऋतु के नवरात्र .... आठ दिनों तक मां मेले में रखे सिंहासन पर आरूढ़ रहीं। ढोल - नगाड़े बजते रहे, मां चुपचाप सब देखती रहीं। मां ने कितनी चुनरियाँ ओढ़ीं, कितनी फूल मालाएं रोज़ पहनीं और उतारीं, नये-नवेले परिधानों में मां का रूप दमकता रहा, पर मां चुप रहीं।

शोरगुल, भीड़-भड़क्के के आठ दिन मैं मेले में तो थी, पर मां के पास नहीं थी। मां से जिन वस्तुओं, जिन आयोजनों को जोड़ा था, उन्हीं में खोयी थी, मां के पास नहीं थी।

नौवां दिन आया - आज पर्व की पूर्णाहुति है। आज मां चली जाएंगी। मैं उदास हूं। पांव उठ नहीं रहे। मां कहां चली जाएंगी? मां क्या जाने के लिए ही आती हैं?

मां को क्या प्रिय है - यह पंडाल, यह रेला, ये रीति-रिवाज़?

मुझे मां प्रिय हैं। केवल मां, और कुछ नहीं। मां जल-मग्न होने जा रही हैं, मेरे आंसुओं के जल में निमग्न। मां के पुष्प-हार बहने लगे हैं। मैंने उन्हें सुकुमार भावों के हार पहना दिये हैं। मां की चुनरी भीग चुकी है। मां मेरे मन की आर्द्रता में सद्य: स्नात कितनी सुंदर लग रही हैं।

मां की ओजस्वी आंखें मुझसे पूछ रही हैं-मेरी आभा किरणों में तुम अपना मार्ग खोज लोगी न! मां का हाथ केवल जल के ऊपर नहीं, मेरे सिर के ऊपर भी है। मां मुझमें हैं, मैं मां में हूँ। जल केवल नयनों में है।❑
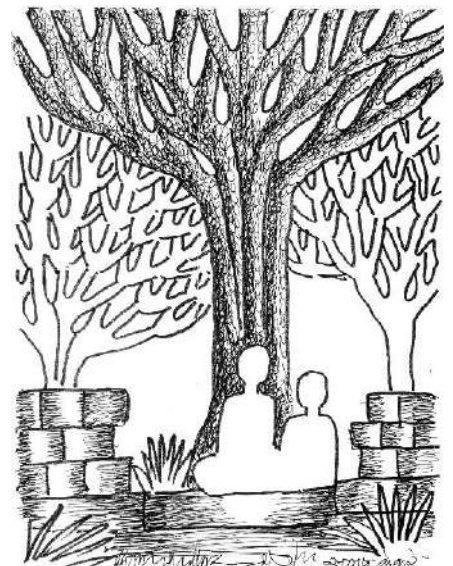
❑
सदाशिव श्रोत्रिय

सदाशिव श्रोत्रिय एक सुचिंतित लेखक हैं। पाठक है। थानवी जी से उनकी पहली मुलाकात शिवरतन जी के भाई के रूप में हुई। उसके बाद अनौपचारिका में लेखक के रूप में इतने जुड़ गये कि उन्होंने थानवी जी को भारतीय संस्कृति की गहराइयों से जुड़े कला, साहित्य, संगीत और दर्शन के मर्मज्ञ के रूप में जाना। श्री रमेश थानवी अनौपचारिका को पुरातन कवियों से लेकर समकालीन कवियों की रचनाओं की खुशबू से महका दे। उसकी सुगंध समाज में फैला रहे थे। थानवी जी के मन में विदुषी महिलाओं के लिए विशेष स्थान था। यही कारण है कि सहजोबाई से लेकर मीरा और गवरी बाई जैसी संत महिलाओं की वाणी से वे निरंतर पाठकों को सुभाषित करते रहे, उनकी सुगंध फैलाते रहे। ❑ **सं.**

श्री रमेश थानवी : जैसा मैंने उन्हें जाना

❑

रमेश थानवी जी से मेरी पहली पहचान श्री शिव रतन थानवी जी के भाई के रूप में हुई, पर धीरे-धीरे मैंने उन्हें एक बहुत ही प्रेमालु , सीधे-सज्जन, आदर्शवादी और भारतीय संस्कृति से गहराई तक प्रभावित शिक्षाविद् के रूप में पहचाना। उनका नाम मेरे लिए सदैव अनौपचारिका से जुड़ा रहा जो सौभाग्य से जीवन भर उनका मुखपत्र बना रह सका। शायद मुझमें कुछ विचार-साम्य पाकर वे कई बार मुझसे उसमें लिखने के लिए कहते थे और तब मेरे लिए भी अनौपचारिका के लिए कुछ लिखना नैतिक बाध्यता बन जाती थी।

मेरे ख्याल से रमेश जी का मानना था कि भारतीय शिक्षा अपने असली लक्ष्य से भटक गयी है और उसे वापस पटरी पर लाने के लिए हमें अपने आर्ष-ग्रंथों और संत-कवियों से प्रेरणा लेनी पड़ेगी ।

संस्कृति के सभी तत्वों - दर्शन, साहित्य, संगीत, कला आदि को वे आज के संदर्भ में खंगालते रहते थे। अनौपचारिका को भी वे अक्सर पुरातन कवियों के सुभाषितों से लेकर हमारे समकालीन कवियों की रचनाओं की साहित्यिक खुशबू से महकाते थे। बाल-मनोविज्ञान की उन्हें गहरी समझ थी और अपने जीवन के अंतिम समय तक वे भारतीय शिक्षा के संबंध में अनेकानेक नूतन प्रयोग करते रहे।

रमेश जी आत्म प्रचार से बचते थे और दूसरों में सद्गुणों की तलाश करते थे। कई कम चर्चित शिक्षाविदों ने भी उनका ध्यान आकर्षित किया था और अपनी पत्रिका में वे अक्सर उनकी चर्चा किया करते थे ।

विदुषी महिलाओं के प्रति एक सम्मानपूर्ण आत्मीयता भाव को भी मैं उनके एक दुर्लभ गुण के रूप में देखता हूं जो उनके व्यक्तित्व को एक विशिष्ट रंग देता था ।❑

५/१२६ राजस्थान हाउसिंग बोर्ड,
सेक्टर १४,
उदयपुर

सादगी–प्रिय रमेश थानवी के विचार तो अमर रहेंगे ...

❑

था नवी साहब नहीं रहे, आज सुबह उनका देहांत हो गया', १२ फरवरी, २०२२ को मेरे मित्र विनोद जोशी की फोन पर बतायी बात पर मजबूरन विश्वास करना पड़ा। लेकिन मन सन्न हो गया। अगले एक घंटे तक किसी से बात नहीं की।

रमेश थानवी जी को मैं भाई साहब ही बुलाता था। हमारी पहली मुलाक़ात श्री असद जैदी ने दिल्ली १९७६ में करायी थी तब वह दोनों 'प्रतिपक्ष' साप्ताहिक के लिए काम करते थे। भाई साहब के ग्रीन पार्क स्थित घर पर भी गया था। पहली मुलाक़ात से ही लगा था कि इतने सहृदय व्यक्ति से मिलना सौभाग्य की बात होती है।

बाद में भाई साहब जयपुर आ बसे–, मैं चंडीगढ़ में दस साल रहने के बाद उदयपुर आ गया ।

एक–दो बार किसी कार्यशाला में सेवा मंदिर, उदयपुर में भेंट हुई । 'अनौपचारिका' पत्रिका के माध्यम से भाई साहब के विचार जानने को मिलते रहते। फिर सीधे जयपुर में २७ मार्च,२००९ को विश्व रंगमंच दिवस पर मेरे द्वारा लिखित, निर्देशित और अभिनीत नुक्कड़ नाटक 'राख सको तो राखो पानी' का प्रदर्शन और नाटक के पुस्तक का विमोचन राज्य संदर्भ केंद्र, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर द्वारा कराया गया। सब रमेश भाई साहब की पहल पर। इसके बाद रमेश भाई के स्नेह के कारण, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के कई कार्यक्रमों और कार्यशालाओं में मुझे भाग लेने का मौका मिला। इस दौरान भाई साहब से लम्बी वार्ताएं होतीं, हमेशा ज्ञानवर्धक। हमेशा कुछ न कुछ नया सीखने को मिलता। शिक्षा में नवाचार लाने के लिए और सब में प्यार के बीज बोने के लिए भाई साहब हमेशा प्रयत्नशील रहते। अनौपचारिक शिक्षा में भाई साहब के प्रकल्पों जैसे बच्चों के लिए विशेष शिविर, पोथी मेला, अंतराल, जन जागरण नाट्य कार्यशालाएं, मिशन ताना–बाना और आनंद शाला आदि से जुड़कर मुझे उनका प्रोत्साहन मिला। मुझे भाई साहब में कबीरजी, नानक जी गांधी जी और कई संतों और गुरुओं के दर्शन हुए जिन्होंने अपना जीवन संस्कृति और समाज की सेवा में

❑
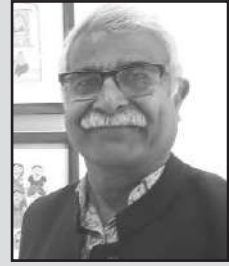
विलास जानवे

रंगमंच की दुनिया में सुप्रसिद्ध विलास जानवे के अभिनय से सभी परिचित है। भारतवर्ष में दिल्ली से लेकर कई प्रांतों में उन्होंने कई एकल अभिनय किये हैं। जीवन में पानी के महत्व को समझा और जाना है। उनकी पत्नी श्रीमती किरण जी भी अभिनय में कंधे से कंधा मिलाकर उनके साथ होती हैं।
राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में भी राख सको तो राखो पानी बहुत ही सुंदर प्रस्तुति भी दी। इस पुस्तक का विमोचन भी थानवी जी द्वारा किया गया था।
बाल वत्सल रमेश थानवी से विलास जी का रिश्ता अटूट, अनूठा और आत्मीयता से भरा है। थानवी जी से उनकी पहली मुलाकात दिल्ली में जब वे 'प्रतिपक्ष' साप्ताहिक के लिए काम करते थे, वर्ष १९७६ में हुई। जैसे ही थानवी जी के चले जाने का समाचार मिला, वे तुरंत दौड़े चले आए उदयपुर से। ❑

लगाया। क्षमा दान और श्रेष्ठ विचारधारा के साथ ज्ञान दान उनको मन से भाता था। सहज और सरल कैसे रहा जाता है, कोई उनसे सीखे। ऐसा संत स्वभाव।

२६ फरवरी को रमेश थानवी भाई साहब के घर बैठने और सबसे मिलने जाने से पहले मैं और मेरी पत्नी किरण प्रौढ़ शिक्षण समिति के परिसर में पेड़ों,चबूतरों और उन सब जगह घूमे जहां भाई साहब बैठते थे। पुरानी स्मृतियों में डूबे सजल नेत्रों और रुंधे गले से भाई साहब की स्नेहिल हिदायतों को याद किया।

भाई साहब के सपनों और दर्शन को पूरा करना और कार्यों को आगे बढ़ाना ही उनको सच्ची श्रृद्धांजलि होगी। समिति उनके अधूरे कामों को पूरा करने के लिए जब भी मुझे याद करेगी, मैं हाज़िर होऊँगा, बाकी भाई साहब की रचनाओं को बच्चों तक पहुचाने का काम तो मैं अपने स्तर करता ही रहा हूँ और आगे भी करता रहूँगा। सहज, सरल और स्नेहिल संत रमेश भाई साहब को सादर नमन। ❑

मार्तण्ड–१०, माधव विहार, सौभागपुरा, उदयपुर–३१३०११
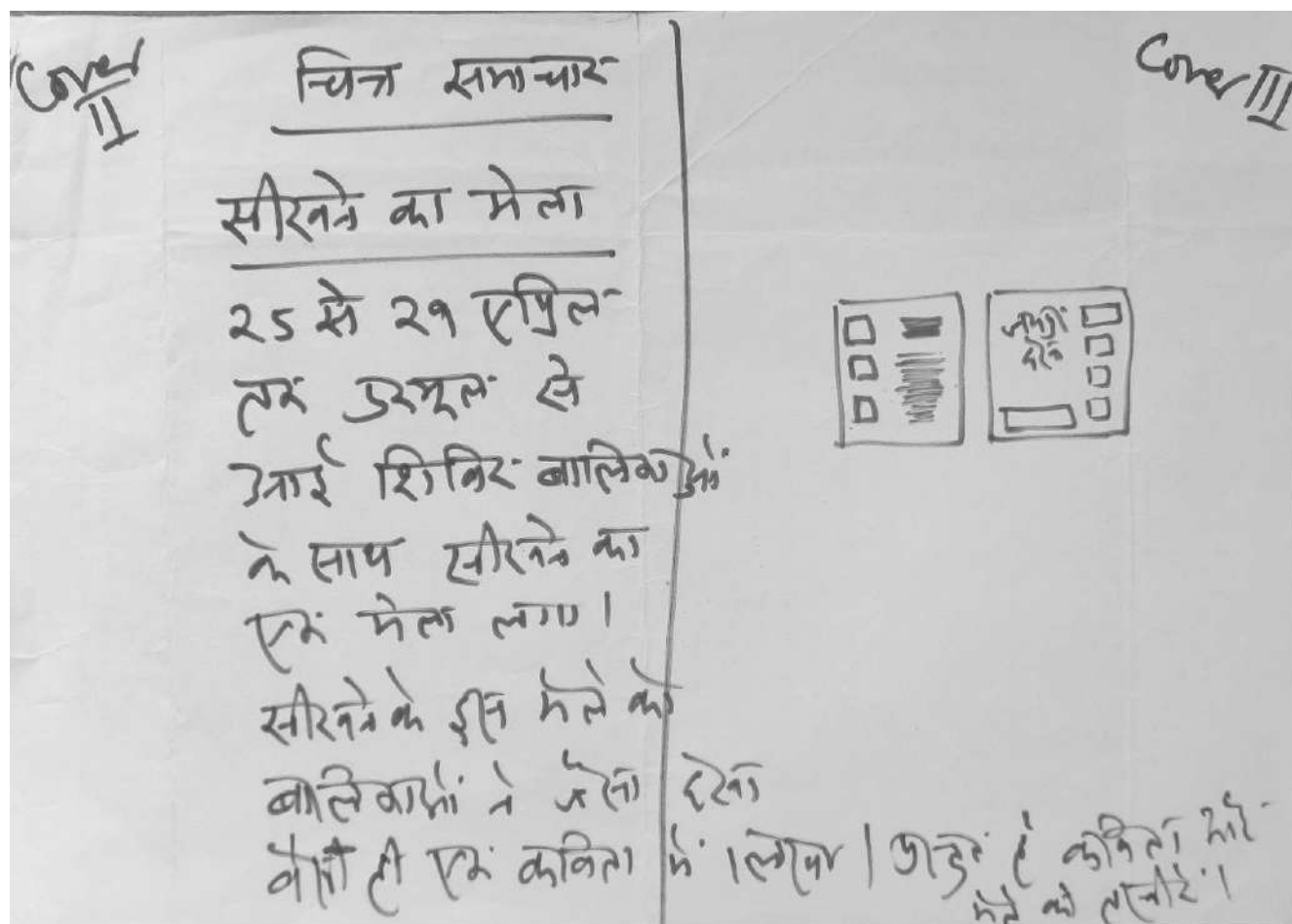
रमेश थानवी द्वारा अनौपचारिका, 2002 का पृष्ठ लेआऊट

रमेश थानवी स्मृति: एक सामासिक अभिभावकीय उपस्थिति

❑

❑
ओमा शर्मा

व्याख्याता ओमा शर्मा मुंबई में रहते हैं। शिक्षण में इनकी बेहद रूचि है। इन्होंने जनसत्ता में दुनिया मेरे आगे स्तंभ में नियमित लेखन किया है।
अपनी मुहिम में रमेश थानवी अपने जैसे उन तमाम तरह के बौद्धिक, शिक्षक, प्रकाशक, छात्रों, कलाकारों, रंग कर्मियों और कार्यकर्ताओं को अपने संग साथ ले लेते थे।
जब थानवी जी ने उनसे प्रेरणास्पद अध्यापकों के बारे में लिखने का आग्रह किया तो संकोच के कारण नहीं चाहते हुए भी सहमत हो गए। थानवी जी एक गहन सामासिक और संवादी सत्पुरुष थे और हम सबके महकदार वटवृक्ष भी। बेहतर समाज की संरचना के लिए वे चाहते थे ऐसी सौंदर्य यादों का साझा करना जरूरी है। प्रस्तुत आलेख उनकी यादों को पाठकों से जोड़ता है।❑सं.

रमेश थानवी जी से मेरा परिचय बड़े भाई प्रेमपालजी के माध्यम से हुआ। प्रेमपाल जी से निजी चर्चाओं में उनका जिक्र अक्सर आ जाता, मुख्यतः मुश्किल हालात में जमीनी स्तर पर निरंतर कुछ सकारात्मक प्रयास करते रहने के कारण और, दूसरे 'अनौपचारिका' जैसी पत्रिका के कारण जो शिक्षा केंद्रित विचारों-सरोकारों को दशकों से एक राष्ट्रीय मंच देने का निराला दायित्व निभा रही थी। लेकिन उनसे सीधा संपर्क-संवाद होना बाकी था सो उनके व्यक्तित्व और भूमिका से अपरिचित ही था।

कोई चार बरस पहले यह सन्नाटा टूटा। वे मुंबई अपनी बिटिया के पास आये हुए थे। मेरा परिवार मुंबई में था जबकि तबादले पर मैं गुजरात चला गया था इसलिए मुलाकात न हो सकी। अलबत्ता मेरे बारे में उनके पास जरूरी जानकारियाँ थीं। उनसे कुछ देर फोन पर ही बतियाने के बाद महसूस हुआ कि उनकी आवाज में किसी पुराने दोस्त की सहजता और आत्मीयता थी। दूसरे को सुनने का अथाह धैर्य अलग, जो सच्चे, कर्मनिष्ठ लोगों की खासियत होती है। मैंने उनके सरोकारों और चले जा रहे कार्यों की सराहना में कुछ कहा तो शालीनता से उसे नजर-अंदाज करते हुए बोले: वह सब तो ठीक है, यह बताइए कि इस अभियान में आप क्या भूमिका निभा सकते हैं। 'मैं तो अभी रचनात्मक लेखन पर आत्मसंघर्ष करता रहता हूँ' मैंने इस अभिप्राय में कुछ कहा होगा। वे जरा हताश हुए बगैर बोले, 'अरे हम कौन सा आपका सब कुछ मांग रहे हैं, आप जो कर रहे हैं, करते रहें लेकिन हमारे साथ भी जुड़िए... हमें आपका मन चाहिए'। ऐसे मनुहार भरे फरमान से उन्होंने एकाएक मुझे अपने पाले में ही कर लिया जिसका सबूत यह था कि अगले ही पल मैं उनसे कुछ यूं कहता दिखा: सर, शिक्षण तो मेरा पहला प्रेम था। केन्द्रीय सेवा में आने से पहले दिल्ली विश्वविद्यालय में मैंने चार बरस पढ़ाया था। मेरी माँ तो कभी नहीं

चाहती थी कि मैं दूसरा कुछ सोचूँ भी, लेकिन सब हमारे चाहे मुताबिक कहाँ होता हैं? लेकिन हमारे जीवन में या हमारे साथ जब जो कुछ होता है, भले के लिए ही होता है...

अपने समाज और आसपास को मैं जिस तरह इस केन्द्रीय सेवा की मार्फत देख-जान सका, विश्वविद्यालय में रहते हुए शायद ही संभव होता मैंने उनसे हामी भरी।

लेकिन मेरा मानना है कि विश्वविद्यालय में अध्यापन का आपका अनुभव आज भी आपकी पूँजी होगा... पता नहीं आप क्या सोचते हैं

जी हाँ, जी हाँ मैंने बेसाख्ता फिर से हामी भरी।

तो क्यों न आप उन अनुभवों को लेकर हमारे लिए कुछ लिखें।

मैं सोच भी नहीं सकता था कि अनजाने ही वे मुझसे कितना अपने लिहाज से फोकस होकर बतिया रहे हैं।

जी, ऐसा तो कभी मैंने सोचा नहीं। वह बात भी पुरानी हो गयी...पच्चीस बरस से ऊपर... इस दरम्यान शिक्षा और व्यवस्था में कितना कुछ तो बदल गया मैंने भरसक बचते हुए एवजी में कहा।

लेकिन उन्होंने दुनिया को मुझसे कहीं अधिक देखा था, इसलिए उसी लय में खुलासा सा करते हुए बोले,

शिक्षा की बुनियादी चीजें कभी नहीं बदलती हैं...टेक्नोलॉजी के कारण ऊपरी साज-सज्जा बदल गयी हो, मांस-मज्जा तो वही है, उसके सरोकार, बुनियादी मूल्य, उसकी अहमियत-जरूरत... सब वैसे ही हैं, रहेंगे, शिक्षक की भूमिका कहाँ-कैसे बदलेगी...

जी, जी

ऐसी उज्ज्वल सोच के साथ सहमत ही हुआ जा सकता था। मुझे कहीं लगा कि वे मेरे भीतर रहस्यमय ढंग से उतर रहे हैं- रूप और कथ्य दोनों स्तरों पर। मुझे किंचित संकोच से घिरा देख तभी उन्होंने सुझाया कि उन अनुभवों को फिलहाल लिखने में हिचकिचाहट है तो क्यों न मैं अपने कुछ प्रेरणास्पद अध्यापकों के बारे में लिखूँ?

यह मुझे मंजूर था।

प्राइमरी से लेकर उत्तर-स्नातक की पढ़ाई के दौरान चार-पाँच अध्यापक-उनकी निष्ठा, श्रम और जीवन के प्रति रवैया-एक सुनहरी याद की तरह आज भी मेरे मन में बसे हैं, शायद दूसरों के साथ भी कमोबेश ऐसा होता हो... लेकिन मेरे संकोच की जड़ कहीं ज्यादा पुख्ता थी: मैंने ऐसा क्या कर लिया जो किसी पायदान पर चढ़कर दूसरों को अपने इस 'बनने' को साझा करूँ? एक अनाम-सा आत्म-संघर्ष ही तो किया है (होगा) जिसमें सुखद संयोगों की कहीं महत्तर भूमिका रही... मैंने ऐसा ही कुछ कहकर अपनी असमर्थता जाहिर की होगी। मगर थानवी जी न सिर्फ अव्वल दर्जे के उदारमना थे बल्कि खासे मनोविद् भी थे, सो बोले: उन चार-पाँच अध्यापकों ने, अपने अध्यापन या आचरण या किसी अन्य स्तर पर कुछ तो किया होगा जो वे आपके भीतर आज भी, जैसा आपने अभी कहा, एक सुनहरी याद बनाये हुए

हैं? हमारा मकसद उसी कोमल याद के सौन्दर्य को वृहत्तर समाज के साथ साझा करना है... क्योंकि वही दूसरों को रोशनी और उम्मीद दे सकता है।

बातों-बातों मे उन्होंने ऐसा 'सत' मेरे आगे इतनी सहजता से अनावृत्त कर डाला कि मैं सकते में आ गया... जैसे किसी मदारी ने सिर से अपनी टोपी हटायी और एक हृष्ट-पुष्ट कबूतर सामने उड़ा दिया हो! उस मुग्धावस्था में फिर भी, पता नहीं क्यों मैं बात को टालने में सफल रहा तो इस वादे के साथ कि फिलहाल न सही, भविष्य में जरूर इस पर लिखूँगा।

तो फिलहाल आप क्या देंगे?

वे जैसे किसी सूरत मुझे छोड़ने वाले नहीं थे।

क्या इन्होंने मेरा लिखा कुछ पढ़ रखा होगा जो इतनी आत्मीयता और आग्रह से 'अनौपचारिका' में प्रकाशित करना चाहते हैं? ओम थानवी जी के संपादकत्व में 'जनसत्ता' के 'दुनिया मेरे आगे' स्तम्भ में नियमित लिखता था लेकिन वह तो बीते जमाने की बात होगी। उनके एकतरफा नाहक भरोसे को देख मुझे मुगालता सा हो आया। यह तो मैंने बाद में जाना कि शिक्षा को लेकर वे कितने व्यापक और समावेशी ढंग से सोचते हैं। अपनी मुहिम में वे तमाम तरह के बौद्धिकों, शिक्षकों, प्रशासकों, छात्रों, कलाकारों, रंगकर्मियों और कार्यकर्ताओं को इसलिए भी संग-साथ ले लेते थे क्योंकि अपने उद्देश्य में वे एक व्यापक, कहना होगा समाजोन्मुखी 'सत' की कामना से लबरेज थे। शिक्षा का ताल्लुक शिक्षक या स्कूल-कॉलेज तक सीमित नहीं रह सकता है...उसे समाज के हर वर्ग, व्यवसाय और व्यक्ति से वास्ता है- या रखना होगा- तो फिर फिर उसे हर तरह की धारा को समझना-परखना होगा, हरेक अनुभव से स्वयं को समृद्ध करना होगा। कहने की जरूरत नहीं कि गांधी को मन की गहराइयों से सोचता-विचारता साधक ही ऐसा कुछ-सोच सकता था।

कुछ समय बाद मैंने स्कूली शिक्षा से सम्बद्ध एक छोटा सा आलेख उन्हें भेज दिया जो उन्होंने 'डर का डर' शीर्षक से अविलंब 'अनौपचारिका' में प्रकाशित कर दिया। आलेख के केन्द्र में मेरी बेटी के स्कूल का हालिया अनुभव था जो स्कूल की प्रिंसिपल महोदया की मार्फत मेरी झोली में आ टपका था: मुझे उन्होंने फकत यह बताने के लिए स्कूल तलब किया था कि मेरी बेटी अपने अध्यापकों से 'डरती' नहीं है! मैं उनसे यह नहीं पूछ सकता था कि खुदारा, एक विद्यार्थी को अपने अध्यापकों से क्यों डरना चाहिए! केवल यह पूछकर रहना पड़ा कि क्या वह स्कूल अनुशासन का पालन नहीं करती है? उनके पास मुझे जब इसका न में उत्तर मिला तो मुझे एक महानगरीय तथाकथित आधुनिक स्कूल के औपनिवेशी, कुन्द मानस की टोह हाथ लगी, जो उक्त आलेख का निकष बनी।

लेकिन थानवी जी का मकसद केवल आलेख छापना नहीं था; परिवार के किसी रहमदिल बुजुर्ग की तरह उनकी नीयत मुझे 'अनौपचारिका' के सरोकारों की छाया प्रदान करना और उसके संस्कारों से जोड़ने की भी थी। और यह

सच है कि मेरे पास आती पत्रिकाओं के बीच इस लघु, चौपन्ने सी पत्रिका ने अपनी अलग जगह बना ली। मुखपृष्ठ खोलते ही 'वाणी' के तहत हर बार कबीर, तुलसी, रैदास, मीरा या किसी अन्य ऋषि-कवि के ऐसे मर्म छीलते कवित्व की महक हाथ लगती कि कुछ पल ठिठककर, आँख मूंदकर उसे जज़्ब करने का मन करे। 'अनौपचारिका' के किसी पुराने अंक को आज भी जब उठाकर देखता हूँ तो हैरानी होती है कि शिक्षा, समाज और अपने समकाल-वातावरण पर माह दर माह कितनी उन्नत, दृष्टि-संपन्न सामग्री से वे समृद्ध रहे हैं! वहाँ जितने नामचीन, स्थापित नाम अपने कौशल से सजे मिलेंगे तो कुछ अज्ञात-कम-नामशील भी आपको उतने ही समृद्ध करते मिलेंगे। पत्रिका के ऊपर किसी के नाम की प्रभा कभी हावी नहीं रही। और यह सब रमेश थानवी जी के प्रयासों का नतीजा था। वे दूसरी भाषाओं और समाजों की वृत्तियों पर भी नजर रखते, इसलिए अनुवाद के रास्ते भी काफी कुछ उसमें समाहित होता। यह 'अनौपचारिका' के नियमित पठन का ही नतीजा हो सकता था कि कुछ वर्ष पूर्व, पाँच सितंबर के रोज मैं आनंद(गुजरात) जिले के ढाई सौ-तीन सौ चयनित अध्यापकों को 'अध्यापक की भूमिका' जैसे विषय पर संबोधित करता पाया गया, जो वास्तव में थानवी सर के कुछ समय पहले अपने अध्यापकीय अनुभवों पर कुछ लिखने के सुझाव का ही परिणाम हो सकता था। बाद में मैंने उस व्याख्यान को लिपिबद्ध करके उनके अवलोकनार्थ भेजा तो 'अनौपचारिका' में स्थान देकर उन्होंने अपनी संतुष्टि भी दिखा दी।

रमेश थानवी जी वस्तुतः गहन सामासिक और संवादी सत्पुरुष थे। एक परिवर्तनकामी माध्यम के तौर पर शिक्षा की सही समझ और प्रयासों को मंच देने और प्रसारित करने के वृहत्तर उद्देश्य के साथ-साथ वे उतने ही चाव से अपने दायरे के मित्रों की खैर-खबर लेते रहते। मेरे उनके बीच उम्र की एक पीढ़ी का तो फ़र्क था ही लेकिन वे हमेशा एक हमउम्र दोस्त की सहजता से ही प्रस्तुत मिलते। उनके कंसर्न बहुत सच्चे होते। उनकी परवाह किसी अभिभावक का भरोसा सहेजती। हम कभी मिले नहीं-हालांकि फोन पर जनवरी २०२२ में उनसे हुई आखिरी बातचीत में उन्होंने मेरे अहमदाबाद के तत्कालीन ठिकाने पर आने की संभावना जतायी थी-लेकिन हमारे बीच विषयों-बातों का कभी टोटा नहीं रहा जो उनकी सदाशयता का ही परिणाम था। मंगलेश डबराल की कविता की पंक्ति हैं... 'जिनसे कभी मिलना नहीं हुआ/ उनकी भी एक याद बनी रहती है जीवन में।'

कोरोना के प्रतिबंधों के बावजूद, उनकी शोक सभा में शामिल लोगों की उपस्थिति बता दे रही थी कि वे मेरे जैसे न जाने कितने लोगों से कितना स्नेह रखते-पाते होंगे। समावेशी और सामासिक मानसिकता तैयार करने के स्तर पर मेरे जाने हिन्दी के परिदृश्य में केवल राजेन्द्र यादव, ज्ञानरंजन और कमला प्रसाद जी ही उनके समव्यसनी
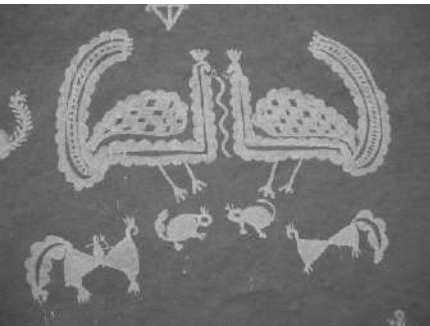
होंगे। इन सभी की उपस्थिति किसी छायादार वटवृक्ष सी रही है। थानवी जी उसी पाये के महकदार वट थे। उनके यूं अचानक चले जाने पर एक शेर रह-रहकर याद आता है:

इस रास्ते पे जब कोई साया न आएगा

वह आखिरी दरख्त बहुत याद आएगा।

और हाँ थानवी सर, अपने चंद अध्यापकों पर कभी लिखने के आपके मशवरे की तामील होगी!❑

ए-२४, इन्कम टैक्स कॉलोनी,

पैडर रोड मुंबई ४०००५१

मो. ९८२०६८८६१०

आत्मिक स्मरण : बहुत याद आएंगे थानवी जी

❑

❑
भगवती प्रसाद गौतम

कोटा निवासी बाल साहित्यकार शिक्षा शास्त्री भगवती प्रसाद गौतम का नाम थानवीजी के परम मित्रों में से हैं।
बज्जू में बालकों के लिए आयोजित कार्यशाला और कोटा में संपन्न शिक्षण साहित्य सृजन शिविर में उन्हें थानवी जी के साथ रहने का अवसर मिला। बरसों से पोस्टकार्ड अंतर्देशीय पत्रों के द्वारा सम्पर्क निरंतर बना रहा।
पुस्तक प्रेमी थानवी जी ने गौतम जी को हिंद स्वराज और सबके गांधी को बार-बार पढ़ने के लिए प्रेरित किया। जिसमें उनके गांधी विचारक, चिंतक होने की छाया प्रतिध्वनित होती थी। पाठक उनकी यादों के झरोखे का आनंद ले पाएंगे। ❑ **सं.**

बडा ही कष्टकारी अनुभव रहा जब शब्दशिल्पी सवाई सिंह शेखावत की फेसबुक वाल पर बरबस ही नजर पड़ी-अभी-अभी खबर मिली है कि जाने-माने शिक्षाविद् और राज्य में अनौपचारिक शिक्षा के सूत्रधार बड़े भाई रमेश थानवी नहीं रहे।.... बाद में 'अनौपचारिका' की संपादक प्रेम गुप्ता जी से भी बात हुई। वस्तुतः थानवी जी के निधन की यह सूचना मेरे लिए भी अप्रत्याशित ही और असह्य ही रही।

नाम तो काफी सुना-पढ़ा था, पर उनसे सीधे-सीधे परिचय का संयोग बना फरवरी २००५ के तीसरे सप्ताह में। हुआ यों कि इससे पहले जनवरी में उनसे दो-तीन बार फोन (लैंडलाइन) पर बात हुई थी। हर बार एक ही आग्रह कि हमारे लिए थोड़ा समय निकालें, बस। आखिर एक दिन उन्होंने अपनी बात खुलकर रख दी- गौतम साहब, आप एक कुशल शिक्षक हैं और बाल साहित्यकार भी। शिक्षा और बाल मन दोनों की समझ है आपको। शरणार्थी परिवारों के बच्चों के बीच कुछ नया करना है और वह भी मुझे और आपको ही करना है। आप सहमति देंगे तभी मैं रूपरेखा बता सकूंगा।

मैं थोड़ा ठिठका, अपरिहार्य पारिवारिक परिस्थितियों के चलते, किंतु मुंह से निकल गया- तो फिर मेरी स्वीकृति स्वीकारिए, बंधुवर।

...और योजना के मुताबिक १९ फरवरी को यही कोई बारह बजे के आस-पास पहुंच गया समिति कार्यालय (राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर)। दिनेश जी पुरोहित वहीं मिले। पूर्व-परिचित थे ही। उन्होंने ही एक बार कोटा में संपन्न प्रौढ़ शिक्षण साहित्य सृजन शिविर के दौरान समकालीन शिक्षा चिंतन की मासिक पत्रिका 'अनौपचारिका' से रू-ब-रू करवाया था, उसकी सदस्यता भी जारी की थी। जीप से पहुंचे तो रमेश जी आवास के बाहर ही टहलते हुए प्रतीक्षारत थे। यही हमारी पहली भेंट थी। बीकानेर के लिए ट्रेन में रिज़र्वेशन था। पहुंचे तो पहले से निर्धारित एक होटल में रात गुजारी, अरविंद ओझा (सचिव उरमूल) से भी वहीं मिलना हुआ। अगले दिन एक वाहन से जा पहुंचे बज्जू स्थित संस्था 'उरमूल सीमांत'। प्रयोजन था प्रेरणा-भवन में २० से २४ फरवरी तक आयोज्य बच्चों की एक सृजन कार्यशाला, जिसे 'लेखन-मेला' नाम दिया गया।

इसी दौर में थानवी जी को निकट से जानने का मौका मिला। बोली-भाषा व संस्कृति की दृष्टि से नितांत नये तीस किशोर-किशोरियों के समूह से पहली बार अंतःक्रिया (आपसी क्रिया-कलाप) की शुरुआत हुई तो उन सभी में एक अजीब-सा उल्लास महसूस हुआ और थानवी जी के चेहरे पर आश्वस्ति का भाव भी। उन्हीं पलों में पठन सामग्री में एक आठ पृष्ठीय रंगीन बाल पत्रिका 'गुब्बारा' हाथ लगी। आश्चर्य कि उसमें मेरी अपनी ही एक कविता 'बोल कबड्डी' भी मौजूद थी। पूछ बैठा- यह कैसे कहां से मिली ? तो उन्होंने ही बताया कि कोई यादव साहब हैं जो शिक्षाकर्मी-प्रशिक्षणों के सिलसिले में संकल्प संस्था, मामोनी (जिला बारां) जाते रहते हैं। वे आपको भी खूब जानते हैं, डायरी में टीप लाये थे। अच्छी लगी तो 'गुब्बारा' में छप गयी।

एक शाम उरमूल सीमांत परिसर में स्थित हॉस्टल की छत से डूबते सूरज के अद्भुत अलौकिक नजारे के दर्शन कराने के बाद उन्होंने ही एक हॉल में आवासीय स्कूली बच्चों से मिलवाया और गीतों-कविताओं का ऐसा मजेदार माहौल बना कि भुलाये भी नहीं भूलता। वे बच्चों में ऐसे घुल-मिल जाते थे कि उनके भीतर का निश्छल बच्चा बांहें फैलाकर उठ खड़ा होता था। एक चर्चा के समय गद्य और पद्य के अंतर को समझाने के लिए वे धीमी-धीमी सपाट चाल से चलते हुए बोले- मुझे देखो, यह है गद्य और फिर वापस मस्ती में उछलते-कूदते लौटते हुए कहा- यह है पद्य। तो बच्चे खिलखिला पड़े और सहज ही भाषा की दो भिन्न विधाओं को आत्मसात कर बैठे।

एक रात हम अपने कमरे में सोने को हुए, तभी वे कहने लगे- गौतम जी, इस वर्कशॉप में, इस मेले में आपके होने से समिति व उरमूल ने खोया कुछ नहीं, पर पाया बहुत है। अच्छा, गुड नाइट! और बस रज़ाई ओढ़ ली। उस पांच दिवसीय वर्कशॉप की रपट 'एक दीए का संकल्प' शीर्षक के साथ 'अनौपचारिका' के अंक (मार्च २००५) में छपी भी थी।

थानवी जी ने कभी मुझे एक पुस्तक भेंट की थी- 'हिंद स्वराज' (महात्मा गांधी) और कहा था- यह आपके लिए ही है। आप इसे जरूर पढ़ेंगे। मैंने उसे पढ़ा, दो-तीन बार पढ़ा और उसमें आये संदर्भों से मेरे कुछ आलेख बरबस ही वजनदार बन पड़े। उनकी प्रेरणा से ही मैं मैत्री समुदाय में शामिल हुआ। इसी सदाशयता से मुझे 'सब के गांधी' (स्व. नारायण भाई देसाई) का सेट भी मिला, जिसका पुरोवाक उन्होंने ही लिखा है। यों वांछित सहयोग राशि भिजवाकर मैंने दायित्व निर्वहन तो किया ही। सच, उनके व्यवहार में भी गांधी-चिंतन की छाया साफ नजर आती रही।

जब भी वे फोन पर बात करते थे, उसमें एक सहजता सरलता के साथ ही अपनत्व अनुभव होता था। हां, याद आया, एक बार अचानक शाम को घंटी बजी। उन्हीं की आवाज थी- गौतम भाई, कष्ट दे रहा हूं। कष्ट नहीं,

ज़िम्मेदारी सौंप रहा हूं। मुंबई से बिटिया (गुनगुन...?) आ रही है, पहली बार अकेली...। ट्रेन सुबह कोटा पहुंचेगी। जाकर सम्भाल लेना। उसे लगेगा, कोई न कोई अपना हर जगह हो सकता है। प्लेटफॉर्म पर बतायी गयी बोगी की ओर बढ़ते हुए जो लड़कियां दिखीं, उन्हीं में एक बिटिया थी, दूसरी उसकी सहेली। उनसे मिल-बतियाकर मुझे भी सुकून महसूस हुआ। लौटते हुए सोचता रहा- यह होता है पिता। आखिर मैं भी तो तीन बेटियों का पिता हूं।

'अनौपचारिका' के संस्थापक संपादक एवं संरक्षक के रूप में उनकी भूमिका अद्भुत और असाधारण रही। कई खास मौकों पर उन्होंने संग्रहणीय विशेषांक दिये। ऐसा ही एक अंक था जिसमें लोककला-संस्कृति मर्मज्ञ डॉ. कोमल कोठारी पर केंद्रित एक लेख पढ़ने को मिला। मैंने उदयपुर में उनसे हुई भेंट से जुड़ा एक प्रसंग 'अनौपचारिका' को भिजवा दिया। शीर्षक था 'कौन हैं ये कोमल दा?' उसे स्थान भी मिला, साथ ही यह आमंत्रण भी कि भविष्य में भी पाठकों से ऐसी सार्थक प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।...और वे इस परंपरा का यथासंभव निर्वहन करते रहे।

यों कोई दो साल छोटे थे, पर मेरी नजरों में वे बड़े ही रहे, अपने काम की वजह से। खेद है कि १२ फरवरी को वे हमसे बिछुड़ गये। चले गये दूर अनंत यात्रा पर अनायास ही। अब उनका कोई फोन नहीं आएगा, उनसे बात नहीं हो पाएगी....पर बहुत याद आएंगे थानवी जी। सादर....❑

१-त-८, अंजलि, दादाबाड़ी, कोटा (राज)- ३२४००९

मो: ९४६११८२५७१

श्री रमेश थानवी : एक समर्पित व्यक्तित्व

❑

श्री रमेश थानवी साहब से मेरा परिचय बहुत पुराना है क्योंकि वे मेरे पिता स्वर्गीय श्रीदयाल चंद्र सोनी से मिलने ४०-४५ सालों से उदयपुर आते रहते थे और ठहरते भी थे । अधिक घनिष्ठता सन् २००८ में मेरे पिताजी के स्वर्गवास के बाद शुरू हुई क्योंकि मेरे पिताजी पर इनकी अपार श्रद्धा थी और इसी कारण अनौपचारिका का जुलाई २००८ का अंक इन्होंने मेरे पिता जी को ही समर्पित किया था। इस विशेष संस्करण के लिए पिताजी से संबंधित लेख, फोटो व अन्य सामग्री उपलब्ध कराने और इस उद्देश्य से इनके उदयपुर आने से यह घनिष्ठता बढ़ती गयी। इसके बाद यही क्रम मेरे पिताजी पर पूरी पुस्तक लिखने के दौरान जारी रहा, और इनके अथक परिश्रम तथा पक्के इरादे के कारण यह पुस्तक नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली से सन् २०१७ में प्रकाशित हुई ।

श्री थानवी साहब ने मुझे सदा अपना छोटा भाई समझा और तदनुरूप ही स्नेह व सहयोग दिया। मैंने इनसे यह सीखा कि चाहे कितनी भी समस्याएँ हों, उनका सामना पूरी हिम्मत से करना चाहिए और अपने लक्ष्य और ध्येय से हर हाल में विचलित नहीं होना चाहिए। लंबी बीमारी व पत्नी के साथ छोड़ने के उपरांत भी इनका जुझारूपन देखते बनता था । योजना और सोच को बड़ा रखने की सीख इन्होंने मुझे दी और मेरे पिताजी के लेखों आदि को ऑनलाइन उपलब्ध कराने के लिये वेब साइट का बहुत ही सटीक नाम शिक्षांजलि डॉट ओआरजी(shikshanjali.org) इन्होंने सुझाया।

मैं इस पत्रिका के माध्यम से श्री थानवी साहब को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।❑

२१ सी, यश विहार, फतहपुरा,
उदयपुर – ३१३००१
मो. ९४१४१६५५२०

❑

ज्ञान प्रकाश सोनी

माड़साहब के बड़े बेटे हैं ज्ञान प्रकाश सोनी। बुनियादी शिक्षा से जुड़े रहे हैं। अपने पिता से इन्होंने छोटे काम को भी उत्कृष्ट तरीके से करने की शिक्षा पायी है। इनका रमेश जी से परिचय काफी पुराना है। रमेश जी के गुरु दयाल चंद्र जी के चले जाने के बाद तो इनका रमेश जी से घनिष्ठता का नाता हो गया।

रमेश जी दयाल चंद्र सोनी को एक ऋषि और अपना गुरु मानते थे। रमेश जी के जीवन पर अपने गुरु का बड़ा प्रभाव रहा।

अपार श्रद्धा के धनी श्री रमेश थानवी ने दयाल जी माड़साहब के नाम खुली वेबसाइट का नाम शिक्षांजलि ही सुझाया था। उन्हीं के संक्षिप्त विचार यहां प्रस्तुत है। ❑ **सं.**

पहली मुलाकात

❑

❑

हनुमान सहाय शर्मा

सेवानिवृत्त शाला प्रधानाध्यापक हनुमान सहाय गणित के सुप्रसिद्ध व्याख्याता हैं। राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में गणित को सरल रूप में कैसे सीखा जाये? इसका प्रशिक्षण भी वे बच्चों को कई बार दे चुके हैं।
अनौपचारिका से इनका निरंतर जुड़ाव दिनों दिन बढ़ता ही चला गया।
अपनी पहली मुलाकात के दौरान थानवी साहब से प्रभावित होकर डायरी में वर्ष २००७ में लिखा अंश जो उनकी आत्मा और व्यक्तित्व के बहुत करीब है। साझा कर रहे हैं हनुमान सहाय जी।❑

विद्यालय शाहपुरा-भीलवाड़ा में आये नये प्रधानाचार्य ने 'अनौपचारिका' शुरू की। हर अंक पढ़ता गया। मन ही मन थानवी साहब का व्यक्तित्व आकार लेने लगा। करीब एक वर्ष बाद फरवरी, २००७ में उनके निवास पर पहली मुलाकात हुई। मैं अपने छोटे भाई, जो प्राथमिक स्कूल में शिक्षक हैं, के साथ उनसे मिला। उस दिन का संक्षिप्त वर्णन मैंने अपनी डायरी में नोट किया था। आज करीब पन्द्रह वर्ष बाद जबकि थानवी साहब का शरीर हमसे जुदा हो गया है, यह विवरण उनकी आत्मा और उनके व्यक्तित्व की बार-बार याद दिलाता है।

मानसरोवर–यानी भारत के सिर मुकुट हिमालय में शीतल एवं निर्मल नीर युक्त झील, जिसके किनारे बसते हैं महायोगी शिव, शिव अर्थात् कल्याणकारी।

मानसरोवर–यानी कि कहानी सम्राट प्रेमचन्द जी की रचनावली, जिसमें पिरोये गये हैं अनमोल रत्न, एक-एक कथानक करते हैं सराबोर भारतीय संस्कृति से, करते हैं सावचेत ईर्ष्यालु और कुटिल पात्रों से, जगाते हैं अभिमान, भारत भूमि में जन्म लेने और देश के लिए मर मिटने में और दर्शन कराते हैं गरीब, असहाय, किन्तु सच्चे, सरल भारतीय देहात से।

और मानसरोवर–मतलब एशिया की वृहदतम कॉलोनी जिसमें बसते हैं परमहंस मानवी, ज्ञानी-विज्ञानी, मृदुल व्यवहार के धनी श्री रमेश थानवी।

दरवाजा खुलते ही – नेत्रों को मिलते हैं सौम्य दर्शन, कानों में घुलते शास्त्रीय संगीत के मधुर स्वर, मन को मिलता है अपार स्नेह। गुरुजन नमन, आगत-स्वागत के साथ होती है चर्चा प्रारंभ...।

... यह क्या बज रहा है ?...– रेडियो वर्ल्ड स्पेस का गंधर्व चैनल, जिस पर सदैव रागों का उचित समयानुसार प्रसारण होता है। भजन चैनल पर भजन और स्तोत्र बजते हैं। गुजराती, पंजाबी, मराठी सभी भाषाओं के चेनल इस पर उपलब्ध हैं, सैटेलाइट एंटीना से ग्राह्य मासिक शुल्क १५० रुपये।

मेरा पत्र मिला ?... आपके पत्र के साथ दो बिन्दुओं पर विचारों में परिपक्वता की आवश्यकता है।

.... परिपक्वता कैसे आये?...– पुस्तकें पढ़ने की आदत डालें। सर्व प्रथम प्रसिद्ध पुस्तकों को पढ़ें, दिवास्वप्न, तोत्तोचान, सर्वोदय पुस्तकें, गीता प्रवचन, गांधी-गीता, विनोबा भावे, रिल्के, ... आदि को पढ़ें। कितने ही लोग एवं परिवार पुस्तकें पढ़कर अपने जीवन को उच्च बना चुके हैं। मैंने खूब पुस्तकें पढ़ी हैं साथ ही हजारों

पुस्तकें लोगों में बांटी है, कबीर मेरे गुरु हैं, कृष्ण मेरे सखा हैं। मुझे कोई शौक नहीं है। अलावा इसके कि पुस्तकें खरीदूं, पढ़ूं, और परिचितों में पुस्तकें बांट दूं। रामकृष्ण परमहंस की जीवनी, जंह-जंह पांव पड़े संतन के, नर्मदा की यात्रा...।

... जीवन का उद्देश्य क्या हो ?...– अपनी आत्मा का विकास, आत्मा के लिए भीतर ही आकाश का सृजन करें ताकि आत्मा बंधे नहीं, कुंठित न हो अपितु आकाश में विचरण करे। विचरण करने से ही अर्थात् गतिमान होने से ही वह विकास कर पाएगी और आत्मा का यही विकास हमारे विचार तथा व्यवहार को सही रास्ता प्रदान करेगा। उस रास्ते पर चलकर जीवन को सफल बनाया जा सकता है। जीवन की सफलता परहित की पराकष्ठा है।

... दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी है, क्या करना चाहिए ?... – स्वयं को श्रेष्ठ बनकर दिखाएं। स्वयं का दायित्व ईमानदारी से निभाएं। इच्छाशक्ति स्वयं दृढ़ हो जाएगी। शिक्षा से कैसे जुड़े थे ?

...राजलदेसर-चूरू एसटीसी में पढ़ाने का अवसर मिला था...– कुन्दनमल जी वैद्य अब फिर से एसटीसी खोल रहे हैं, वहां ज्वाइन करोगे ?

.... सरकारी नौकरी है ना, कैसे छोड़ें?...– ये सब बंधन है, बंधनों से मुक्त होने पर ही रचनात्मकता मुखर होती है।

... यह मेरा छोटा भाई है, प्राथमिक स्कूल में पढ़ाता है...– आप भी पढ़ें, लिखना शुरू करें, बच्चों के साथ होने वाले अनुभवों को मुझ तक भेजें। आपके हुए अनुभव ही सच्चे हैं, अनमोल हैं, इन्हें व्यर्थ गुम न होने दें। बच्चों की आत्मा को जगाएं, पुस्तकें पढ़ने की ललक पैदा करें। मुझसे १००-५० पुस्तकें ले जावें, बच्चों में बांटें, उनको पढ़ने का अवसर दें। मैं भी आपके विद्यार्थियों के साथ दो-चार दिन रहना चाहूंगा। पीने का पानी तो है ना वहां ?

... स्वागत है...– शाहपुरा प्रवास का भी विचार है, भाई गोपाल पंचोली और ओम प्रकाश माहेश्वरी जी को बताना मैं शाहपुरा आ रहा हूं। विजय जी त्रिपाठी और पंचोली जी को धन्यवाद देना कि उन्होंने रामस्नेह पंथ का कुछ साहित्य मुझे उपलब्ध कराया। यह देखिए शांति निकेतन में दिये गये व्याख्यान में मैंने रामस्नेही का जिक्र किया है।

... अंत में ...– दूसरों के लिए जीना सीखें। रोशनी का आनंद महसूस करें, दूसरों को रोशनी दिखाएं। यह मेरी पुस्तक 'रहमान भाई' लीजिए, पढ़ना और पढ़ाना। ❑

सेवानिवृत्त स्कूल प्रधानाचार्य,

३२/३४०, सेक्टर-३, प्रताप नगर,

जयपुर-३०२०३३

मो.-९५०९८४६१८२
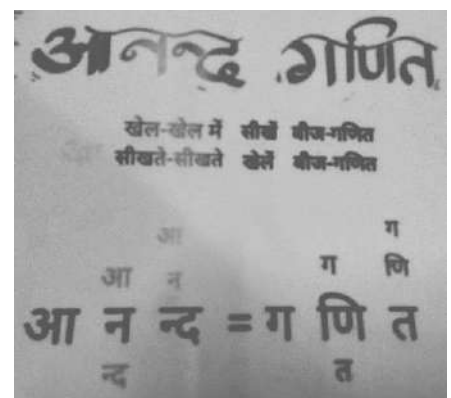
उनके पास अभेद भाषा का उजाला था

❑

❑

अमित कल्ला

सुप्रसिद्ध कवि एवं कला प्रेमी अमित कल्ला रमेश थानवी के मित्रों की सूची में अग्रणी है। पाठक जानते हैं कि अनौपचारिका में अमित कल्ला की कई कविताएं एवं कला प्रदर्शनी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कविताओं की एक किताब 'शब्द कहे से अधिक' जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है।
अमित कल्ला थानवी जी के संवेदना से, प्यार और रस से भरा कविता पाठ प्रस्तुत कर रहे हैं। ❑ सं.

उनके पास
अथाह प्रेम भरा विश्वास था
कारुण्य का विधान बना जो
सत्य समता सम्भाव
पा लेने का
उनके पास
गहरा शब्द सान्निध्य
अनुसंधान था
विचारों की अंतरवली में
तत्क्षण उतर जाने का
उनके पास
दस्तक देता
श्वेत आकाश संवाद था
निर्झर अक्षरों को अनायास
स्वर सहित बांध लेने का
उनके पास
चिर परिचित
अभेद भाषा का उजाला था
ठहरे हुए सुख को
सुवासित करने का
उनके पास
स्थिर अभिनव अंतराल था
बहती नदी-सा लहर
दोहराते बहाव
बदल देने का
उनके पास
टूटती जुड़ती
संवेदनाओं का विस्तार था
स्मृतियों में तरबतर पारदर्शी
एकाकी उत्सर्ग हो जाने का
उनके पास
तरलतम अंश-अंश
भीतर उतरता मौन था
सौम्य कल्पनाओं को
साकार करने का
उनके पास
समय को रच उसे
चित्र शिल्प-सा संवारकर
सहेजने का आदिम इंतज़ार था
बहाना ही था जो स्वयं को
विलीन कर देने का
उनके पास
स्वयं प्रकाशित
समय शताब्दियाँ की
आँखें थीं, साहस था
धुंधलके पार
देख लेने का
उनके पास
शालीन श्रुतियाँ, शब्द विराम
मंगल उच्चारण था
गहरा आविर्भाव था
विदेह होने का.... ❑

४३, जोशी कॉलोनी, बरकत नगर, टोंक फाटक, बरकत नगर, जयपुर-३०२०१५

रमेश थानवी : कुछ यादें

❑

रमेश से मेरा परिचय अस्सी के दशक के मध्य में हुआ था। राज्य संदर्भ केन्द्र उस वक्त उनके नेतृत्व में एक बेहद जीवन्त, क्रियाशील व प्रभावी संस्था थी। प्रौढ़ शिक्षा को समर्पित इस संस्था को वे दिशा अवश्य दे रहे थे, पर रमेश जी की शिक्षा में रुचि संकुचित न होकर व्यापक और गहन थी। वे आजीवन सीखने-जानने-तलाशने, समझने-समझाने, पढ़ने-पढ़ाने की सतत प्रक्रिया में लगे रहे। 'आखरों' की दुनिया की छानबीन करने और उसमें कदम रखने को लोगों को आमंत्रित-प्रेरित करने में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

उनकी सर्जनात्मकता व अपार ऊर्जा ने अनेक लोगों को प्रेरित व प्रभावित किया है । मुझे भी उनसे और उनके माध्यम से अन्य दिग्गजों, विशेष कर हरीश भादानी, शिवरतन जी भाईसाहब, भाई अरविन्द गुप्ता आदि से सीखने का सौभाग्य मुझे मिल सका । राज्य संदर्भ केन्द्र कार्यालय के वातावरण में उन दिनों एक जीवन्त स्फूर्ति थी जो सबको कुछ रचने को उकसाती थी।

अनुवाद की दुनिया से मेरा परिचय भी रमेशजी ने ही करवाया। उनके आग्रह पर अनौपचारिका के लिए प्रौढ़ शिक्षा पर अंग्रेज़ी आलेखों का हिन्दी तर्जुमा करने के साथ जो यात्रा आरंभ हुई वह न जाने कब और कैसे मेरे जीवन का आधार बन गई। मातृ भाषा हिन्दी और बचपन से सीखी-पढ़ी अंग्रेज़ी में अपनी दखल पर मुझे बहुत भरोसा न था। पर अपनी स्वाभाविक उदारता और दूसरों की हौसला अफ़ज़ाई के हुनर के चलते रमेशजी ने कमज़ोरियों को पहचानने और उनसे जूझने की हिम्मत दी। बाद के वर्षों में मैंने उन्हें संदर्भ केन्द्र से जुड़ने वाले तमाम अन्य साथियों के लिए अनेक बार सहज ही 'गुरु' की भूमिका धारण करते और स्नेह से उनका दिशा-दर्शन करते देखा।

राज्य संदर्भ केन्द्र और जयपुर से भौतिक दूरियों ने उनके विलक्षण स्नेह में कभी कमी न आने दी। फोन व मेल के माध्यम से वे लगातार नये प्रयोगों-आयोजनों की सूचना और उनमें शिरकत करने का आमंत्रण देते रहे। बातचीत और मुलाकातों में लम्बे

❑

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

हिंदी, अंग्रेजी की दुनिया में पूर्वा कुशवाहा का नाम जाना पहचाना एवं सुप्रसिद्ध है। वे राज्य संदर्भ केंद्र, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के प्रारंभिक दिनों से ही समिति से जुड़ गयी थीं। पूर्वा जी ने अनौपचारिका के लिए प्रौढ़ शिक्षा पर लिखे कई अंग्रेजी आलेखों का हिंदी अनुवाद किया है। इन्होंने तोत्तोचान जैसी सुप्रसिद्ध अनेक पत्रिकाओं का हिंदी अनुवाद भी किया है।
यादों के झरोखे से वे कहती हैं शिक्षा को समर्पित इस संस्था को रमेश थानवी ने न केवल दिशा ही दी बल्कि आजीवन आखर की दुनिया से लेकर लोगों का परिचय कराया, उन्हें मार्गदर्शन दिया। वे सहज ही गुरु की भूमिका आजीवन निभाते रहे।❑ सं.

अंतरालों के बावजूद उनका स्नेह सतत बना रहा। आज इसी बात से कुछ संतोष पाने का मन कर रहा है कि मुम्बई में अपनी छोटी बिटिया गुनगुन के पास आने पर वे दो बार मिलने आ सके।

उनकी साहित्यिक रचनाओं के अलावा अनौपचारिका के आरंभ से ही उनमें छपे रमेशजी के सम्पादकीय उनके सरोकारों, उनके चिन्तन, शिक्षा से जुड़ी समस्याओं की ज़मीन से जुड़ कर की गयी व्याख्या के अनुपम उदाहरण हैं। रमेशजी की स्मृतियों को संजोने, शिक्षा जगत में उनके योगदान को उभारने का एक सुन्दर तरीका होगा। इन सम्पादकीय लेखों का एक संग्रह प्रकाशित करना। उम्मीद है राज्य संदर्भ केन्द्र और राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति यह शिक्षण सहर्ष करेगी।❑

नागार्जुन, रेजीडेंसी, फ्लेट नं.–ए २–६०८,
एनएएसआर स्कूल के सामने गांचीबौली,
हैदराबाद,
तैंलगाना–५०००३२
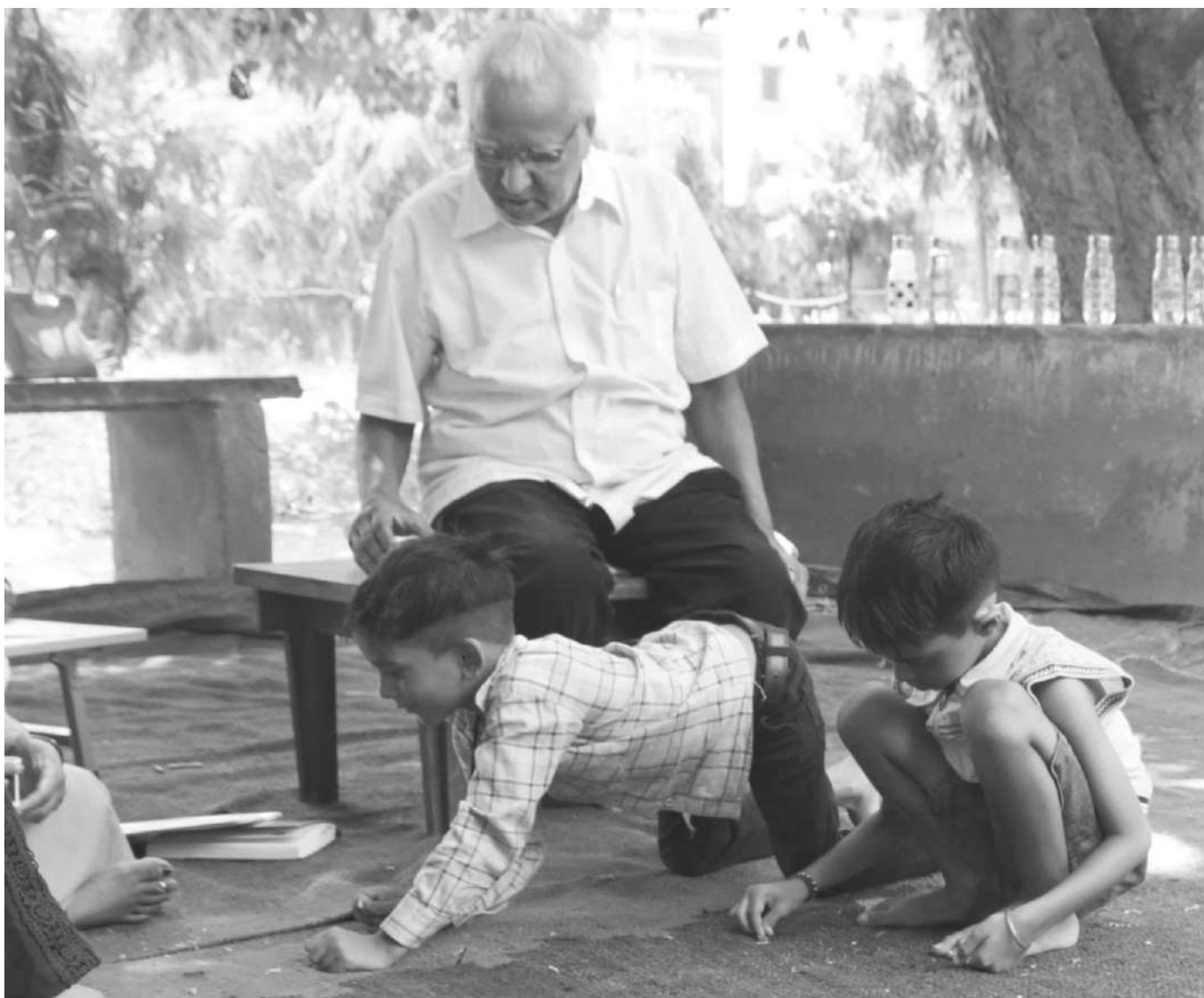
एक उत्प्रेरक व्यक्तित्व

❑

मेरे जेहन में रमेश जी की अनेक स्मृतियाँ हैं जो परस्पर विलयित होती रहती हैं। मुझे लगता है, शायद उनके कारण ही मेरे जीवन का पथ भी बदल गया था। संभवतः यह आठवें दशक का आखिरी साल था। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन बन गया था और उसके द्वारा देश भर में संपूर्ण ग्राम साक्षरता कार्यक्रम शुरू किया गया था। इसी के अन्तर्गत भरतपुर जिले के नदबई विकास खंड के अखैगढ गाँव को साक्षर किया गया था। राज्य संदर्भ केन्द्र ने एक अभिनव योजना बनायी और अखैगढ़ गाँव में ही एक लेखन- शिविर आयोजित किया गया। इसके पीछे दृष्टि यही थी कि लेखक नव- साक्षरों से प्रत्यक्ष संपर्क- संवाद कर उनके लिए साहित्य का सृजन करें।

मैं उन दिनों भरतपुर में एक पाक्षिक अखबार दिशाबोध का संपादन कर रहा था। उस अंचल की तमाम सांस्कृतिक हलचलों में तो हम सक्रिय रहते ही थे। उन दिनों अंचल में आधुनिक बनाम पारंपरिक साहित्य में विभाजन था। उस समय के जिला प्रौढ़ शिक्षा अधिकारी गोपाल प्रसाद मुद्गल स्वयं पारंपरिक किस्म के कवि थे। रमेश जी ने उन्हे अखैगढ़ के रचना- शिविर की तैयारियों के लिए बोला हुआ था। शिविर से एक दिन पहले वे स्वयं भरतपुर आ गये। कवि- कला समीक्षक हेमंत शेष तब वहाँ एडीएम थे। मुद्गल जी ने रचना- शिविर के संभागी लेखकों की सूची रमेश जी को दी जिसमें लगभग सभी छंदबद्ध लिखने वाले कवि थे। रमेश जी ने सूची मशविरे के लिए वहीं बैठे हेमन्त शेष को दे दी। उन्होंने सूची में दर्ज कवियों के प्रति अनभिज्ञता जताते हुए कहा कि वे तो यहाँ के सिर्फ विजेन्द्र, पानू खोलिया और राजाराम भादू को ही जानते हैं। और तब रमेश जी ने मुझे बुलवाया। यह उनसे पहली मुलाक़ात थी।

गोपाल प्रसाद मुद्गल सज्जन व्यक्ति थे। उन्होंने सहर्ष मेरे सुझाये नाम शामिल किए बल्कि उनसे व्यक्तिश: आग्रह करने का भरोसा दिया। असल में उनको लगता था कि खुद को आधुनिक मानने वाले लोग नव- साक्षरों के लिए लिखने में रुचि नहीं लेंगे। दूसरे दिन अखैगढ में रमेश जी लेखकों से आत्मीयता पूर्वक मिले और कार्यशाला में संभागियों को शुरुआती उद्बोधन दिया, वहीं से वापस जयपुर चले गये। उनके उस उद्बोधन को मैंने दिशाबोध के बीच के पृष्ठों पर एक व्याख्यान के रूप में प्रकाशित किया और उन्हें भेज दिया। अखबार में फोन नंबर उसके मालिक (प्रेस) का छपता था। कॉल किया तो मैं तो नहीं मिला, पर मालिक- प्रकाशक मिले और उनके थानवी जी से रिश्ते स्थापित हो गये। यह रमेश जी की संक्रामक खूबी थी। मुझे उन्होंने पत्र में लिखा कि जब भी जयपुर आऊं, उनसे मिलूं।

❑

राजाराम भादू

राजाराम भादू एक आलोचक साहित्यकार हैं। इनकी साक्षरता अभियान.. जैसी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन्होंने शिक्षा विमर्श, मीमांसा जैसी कई पत्रिकाओं के प्रकाशन में अपना योगदान दिया है।
रमेश जी किसी भी परीक्षा प्रतियोगिता और मूल्यांकन के विरोधी थे। उनका मानना था कि किसी भी महिला-पुरुष और बालक का मूल्यांकन करने पर उसकी गरिमा पर चोट लगती है।
दिगंतर संस्थान के संस्थापक उपाध्यक्ष रहे श्री रमेश थानवी की कला और संस्कृति में दिलचस्पी और दृष्टि चकित कर देने वाली थी।
प्रस्तुत आलेख में राजाराम भादू अपने कर्म यात्रा में रमेश जी के योगदान का साझा कर रहे हैं।
❑ **सं.**

लेकिन इससे पहले हमारे पड़ौसी मोहनलाल मधुकर जी ने एक दिन आकर बताया कि थानवी जी शाम को उनके टेलीफोन पर

मुझे कॉल करेंगे। मैंने रमेश जी को बता दिया था कि मधुकर जी हमारे पड़ौसी हैं। मधुकर जी उनके पूर्व परिचित थे और अखैगढ़ शुरुआती सत्र के लिए आये थे। रमेश जी ने मुझसे कहा कि यूनिसेफ की एक कार्यशाला के लिए मुझे लिटरेसी हाउस लखनऊ जाना है। अगले कुछ दिन में मुझे लिटरेसी हाउस के निदेशक के नाम एक चिट्ठी सहित कार्यक्रम की पूरी डिटेल मिल गयी। मैंने लौटकर कार्यशाला के अनुभव उन्हें लिख भेजे। इसके बाद ही उनसे जयपुर में मिलना हुआ।

बल्कि यहाँ मिलने से पहले जयपुर की अपनी मित्र-मंडली में उनका जिक्र किया तो पता चला कि शायद ही कोई ऐसा था जो उनके गुरुत्वाकर्षण के दायरे से बाहर हो। सत्यनारायण, लवलीन, सुरेन्द्र जोशी वगैरह सब उनके स्नेह-पात्र थे। मैं भी इसी परिधि में एक पात्र हो गया। तब तक मैं पत्रकारिता से अलग कुछ करना चाहता था। मुझे लगा कि फ्रीलांसिंग के लिए एक और क्षेत्र हो सकता है, जिस पथ की बात मैं ने शुरू में चर्चा की है। स्वयंसेवी संस्थाओं का एक पूरा क्षेत्र मेरे सामने खुल गया था जिसमें मैंने रमेश जी के दरवाजे से प्रवेश किया था। बहरहाल, मैंने जयपुर के राजापार्क में वनरूम सेट लेकर ठिया जमाया और फ्रीलांस काम करने लगा। रमेश जी को मेरा जयपुर आना अच्छा नहीं लगा। मुझे उनकी इस प्रतिक्रिया की गंभीरता काफी बाद में समझ आयी। प्रतिभाएं बड़े शहरों में संकेन्द्रित होती रहती हैं और इस बौद्धिक पलायन से गाँव- कस्बे व छोटे शहर सांस्कृतिक और बौद्धिक रूप से विपन्न होते जा रहे हैं।

तदनन्तर मुझे विकास अध्ययन संस्थान (आईडीएस) में अस्थायी तौर पर एक काम मिल गया। मैं सामाजिक शोध की प्रक्रिया को सीखना- समझना भी चाहता था। वहां मैं शिक्षा संकाय में था और शैक्षिक कार्यक्रमों के मूल्यांकनों के कुछ काम हमारे पास थे। तब तक देश भर में जिला स्तरीय साक्षरता अभियानों का पहला चरण पूरा हो चुका था और उनके मूल्यांकन होने थे। भरतपुर जिला कलक्टर ने आईडीएस को इसके लिए पत्र भेजा। निदेशक ने मेरे आग्रह पर भरतपुर कलक्टर को प्रस्ताव भेज दिया जिसे स्वीकार कर लिया गया। हमें मूल्यांकन परियोजना के लिए दो शिक्षाविदों को परामर्शदाता बनाना था। इनमें एक थानवी जी थे। हमने नव- साक्षरों के मूल्यांकन के लिए प्रपत्र तैयार किया और इन्हें लेकर अपने एक सहयोगी के साथ मैं रमेश जी पास सलाह हेतु गया। वे सुनकर बहुत नाराज हुए और उन्होंने प्रपत्र देखने तक से इंकार कर दिया। वे नव-साक्षरों के किसी भी प्रकार के परीक्षण के विरुद्ध थे। मैंने अपनी प्रक्रियागत विवशता बतायी और कहा कि हमारे प्रपत्र उदार व लचीले हैं। अंत में उन्होंने हमें हिदायत दी कि हम उन ग्रामीण स्त्री-पुरुषों की गरिमा का पूरा ध्यान रखें।
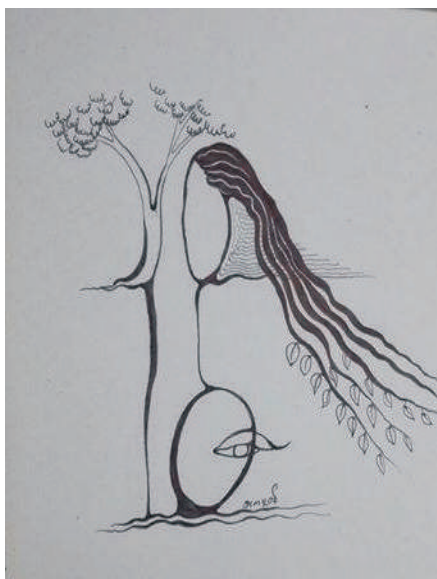
उनकी उस डांट व सीख ने सदैव के लिए मेरा नजरिया बदल दिया।

विकास अध्ययन संस्थान से निकल कर मैं फिर से फ्रीलांसिंग करने लगा, यद्यपि अब काम प्रकृति में कुछ भिन्न व आकार में बड़े थे। दिगन्तर के लिए कुछ शोध व मूल्यांकन के बाद शिक्षा

पर एक गंभीर पत्रिका निकालने की योजना बनी। जब मैंने शैक्षिक पत्रिका का अपना प्रस्ताव उन्हें दे दिया तो उस पर विचार के लिए रमेश जी व कृष्ण कुमार जी को बुलाया गया। रमेश जी दिगन्तर के उपाध्यक्ष थे, कृष्ण कुमार आमंत्रित थे। दोनों ही मेरे प्रस्ताव और उसकी प्रस्तुति से संतुष्ट नहीं हुए, हालांकि उन्होंने प्रायोगिक तौर पर इसे निकालने की सहमति दे दी। पत्रिका के दो- तीन अंक निकलते ही कृष्ण कुमार इसके प्रशंसक हो गये बल्कि नियमित सलाह देने व लिखने भी लगे। किन्तु रमेश जी मेरे संपादन में निकली विमर्श (पत्रिका) से कभी सन्तुष्ट नहीं नजर आये। ऐसा क्यों था- यह बात मेरी आज तक समझ नहीं आयी है।

रमेश जी के विपरीत शिवरतन (थानवी) जी ने विमर्श का तहेदिल से स्वागत किया। पहले ही अंक से विमर्श के शुरुआती अंकों में प्रकाशित उनके लंबे- लंबे पत्र इसकी गवाही देते हैं। मेरी उनसे कोई मुलाकात नहीं थी। उनके पत्र भी विमर्श के पते पर मिले थे। यह जरूर पता था कि वे रमेश जी के बड़े भाई और ओम जी के पिता हैं। ओम जी से तो परिचय तब से था, जब वे इतवारी पत्रिका का संपादन करते थे। शिवरतन जी के कई लेख पढ़े हुए थे और शिविरा व टीचर टुडे की फाइल देखं चुका था। शिवरतन जी दिगन्तर में आते रहते थे। एक दिन रोहित धनकर ने कहा- शिवरतन जी से मिलना चाहते हो ? मेरे हां कहने पर उन्होंने बताया कि वे लाइब्रेरी में हैं, वहाँ चले जाओ। तुम्हें पूछ रहे थे। उनसे मिलने पर लगा ही नहीं कि पहली बार मिल रहे हैं। उनसे संवाद-संपर्क मेरी स्मृतियों का उज्ज्वल पक्ष है। यहाँ कहना यह है कि रमेश जी व शिवरतन जी से मेरे पृथक और स्वतंत्र संबंध थे। बल्कि शायद सभी के ऐसे ही रहे होंगे और ऐसा इन शख्सियतों की अपनी विशेषता के कारण था।

बीच में, मैं अपनी संस्था समान्तर में व्यस्त हो गया। रमेश जी भी कुछ समय समिति (राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति) से दूर रहे। फिर हमने समान्तर से संस्कृति केन्द्रित पत्रिका 'मीमांसा' निकालनर शुरू की। विमर्श के विपरीत 'मीमांसा' की रमेश जी ने दिल खोलकर सराहना की। इसके हर अंक पर उनका फोन आता। जब भी इसके प्रकाशन में अंतराल आता, वे फोन करके अपनी चिन्ता जाहिर करते। इसके लिए उनके सुझाव तो सदैव मूल्यवान थे ही, हमने यथासंभव उनको रूपायित करने का प्रयास भी किया। कला और संस्कृति के विविध पहलुओं में उनकी दिलचस्पी और दृष्टि चकित करती थी।

यह बात कोई ज्यादा पुरानी नहीं है। महामारी से थोड़ा पहले की है और हमारे लिए बहुत यादगार है। समान्तर राजस्थान की शिक्षा में सक्रिय चार

संस्थाओं के लिए संदर्भ सहयोग प्रदान करने का काम कर रहा था। ये सभी संस्थाएं हाशिये के समुदाय के बच्चों के लिए प्रदेश के अलग- अलग अंचलों में कार्यरत थीं। इनकी एक क्षमता-वर्धन कार्यशाला हमने समिति के परिसर में ही आयोजित की। इसका कोई औपचारिक उद्‌घाटन तो हमें कराना नहीं था। मेरे मन में खयाल आया कि रमेश जी के

उद्बोधन से इसकी शुरुआत की जाये। संयोग से वे उस दिन जल्दी आ गये थे और अपने कमरे में थे। हमारे संभागियों में उन्हें दो-चार लोग ही जानते थे। मैंने उनके परिचय में अपनी इन्ही स्मृतियों का सहारा लिया। रमेश जी भी थोड़ा भावुक हो गये और उनके उद्बोधन ने तो सबको छू लिया। अगले दिन उन्होंने कह रखा था कि मैं आते ही उनसे मिलूं। वे बोले, मैं पांच मिनट के लिए आना चाहता हूं। मैंने कहा-आप शर्मिंदा कर रहे हैं और उन्हें साथ ले गया। अगले दिन समापन था और मैंने उनसे आग्रह कर दिया था कि यह भी आपको ही करना है। उन्होंने सबको तोत्तोचान की एक-एक प्रति दी। प्रत्येक संभागी से उन्होंने निजता स्थापित कर ली थी।

अभी मैं एक ऐसी शिल्पकार पर काम कर रहा हूं, जो संभावनाओं से भरी थी लेकिन उसे ज्यादा जीवन नहीं मिला। उसे दुर्लभ असाध्य बीमारी का सामना करना पड़ा जिसमें तंत्रिकाएँ काम करना छोड़ने लगती हैं। एक शिल्पकार के लिए इससे भयावह त्रासदी और क्या हो सकती है ! हताशा की स्थिति होते हुए भी उसने देश में कई जगह उपचार कराया। उसका आखिरी उपचार जयपुर के राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान में चला और रमेश जी उससे नियमित मिलने जाने वाले एकमात्र व्यक्ति थे। मैं बस रमेश जी को मिलने के लिए फोन करने ही वाला था कि उन्हें सरप्राइज दूंगा, मैं हिमा पर काम कर रहा हूं और आप मुझे गाइड करिए। इस तरह उनकी खुशी देखने और उनसे उत्प्रेरण व स्फूर्ति पाने के लालच में था। उनके सहसा जाने ने इस पर तुषारापात कर दिया। आप मेरी क्षति का अनुमान लगा सकते हैं, अब इसे आप उनके संपर्कों की दुनिया से गुणा कर लें। ❑

८६, मानसागर कॉलोनी, श्योपुर रोड, प्रतापनगर, सांगानेर, जयपुर-३०२०३३
मो.-9828169277

शाशा

दही में मिश्री
दही में बताशा
शाशा करता
खूब तमाशा।

रमेश थानवी

श्री रमेश थानवी बेटी की नजर से...

❑
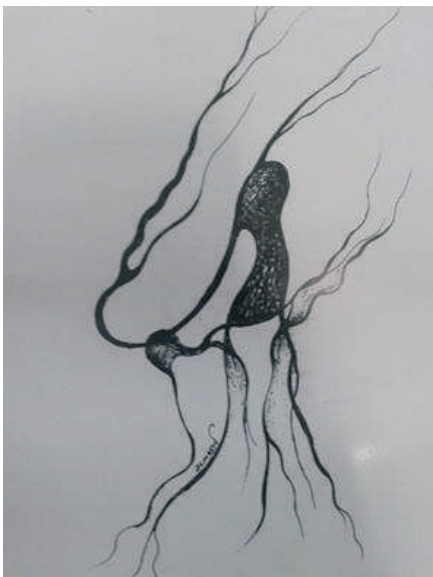
आदरणीय श्री रमेश थानवी को मैं कई बार प्यार से 'रमेश' संबोधित करती थी। वे परम्परागत परंतु आधुनिक नज़रिये वाले पिता थे। हम तीन बहनों को बड़ा करना आसान काम तो नहीं रहा होगा। हम तीनों बहुत ही कठिन व्यक्तित्व वाली बेटियां हैं, पर हां शायद हमारे कठिन होने में पापा का योगदान रहा होगा । जीवन के सारे उतार-चढ़ाव, कठिनाइयां, पैसे का अभाव, मम्मी का चला जाना इस सबके बीच भी वह बहुत कुछ कर पाये। पीछे मुड़कर देखती हू तो लगता है कि हम तीनों किस तरह के अभिभावक हैं या बन पाएंगे पता नहीं। बच्चों को बड़ा करना एक कठिन काम है। तमाम मुश्किलों के बावजूद उन्होंने हमें बहुत कुछ सिखाया और कितने-कितने तरह के विषयों से हमारा परिचय कराया, उसकी फेहरिस्त बनाना एक लंबा काम होगा । बेहतरीन किताबों, फिल्मों, संगीत और थियेटर की दुनिया हमारे सामने परोस दी। इस घर में जन्म लेना सौभाग्य है।

हमें आजादी और स्वराज के अर्थ भली-भांति समझा सकने वाले मेरे पिता ने हमें गरिमा पूर्ण तरीके से जीवन व्यतीत करना सिखाया।

महिलाओं के जीवन की मुश्किलें और हमारे समाज में गहरी बैठी हुई जेंडर आधारित असमानता से लड़ना, उनका विरोध करना भी हम समझते जानते रहे। इन सबके चलते रिश्तों का टूटना उन्हें पसंद नहीं था। आग्रह हमेशा यही रहता था कि इन मुद्दों पर बात हो, चर्चा हो और सभी सहजीवन की ओर अग्रसर रहें। रिश्तों में प्रेम बना रहे यह उनकी पहली इच्छा होती थी। महिला-पुरुष के रिश्तों के अलावा भी सभी रिश्तों में प्रेम बना रहे इसके लिए वे हमेशा प्रयासरत रहे। हमें प्यार और मोहब्बत के गहरे मायने उन्हीं से सीखने को मिले। वे सभी रिश्तों को जिस तरह से जिया करते थे वह अपने आप में **इंसानियत की एक मिसाल** है। सब पर भरोसा करना उनकी आदत थी, हमेशा मुझे लगता है कि पापा इतना भरोसा क्यों करते हैं? धीरे-धीरे हम तीनों बहनें भी पापा जैसी ही हो गयीं इस मामले में। किसी को भी अपना गम बता देना, किसी के साथ खुशी बांट लेना, जीवन का सरल सा मूल्य बन गया। पर यह कोई बड़ी बात नहीं थी, ना ही है।

इंसान पर भरोसा करना हमारी जिंदगी में निहित है। सब के प्रति उदार रहना ज़रूरी था, हमारा घर सभी के

गुनगुन थानवी

❑

गुनगुन थानवी ने टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंस, मुंबई से शिक्षा पायी है। अरावली और दूसरा दशक जैसी संस्थाओं में काम किया है।
पिछले कुछ वर्षों में वे यूनीसेफ सेव द चिल्ड्रन, मैजिक बस डोरस्टेप स्कूल जैसी संस्थाओं के साथ करती रही हैं। वर्तमान में सोसियोलॉजी ऑफ एज्यूकेशन में पीएचडी कर रही हैं, TISS मुंबई से। इसके इतर पीएचडी करते हुए एमफिल की क्लासेज भी पढ़ाती हैं। जैविक खेती, खाद बनाना और मिट्टी के बर्तन बनाना इनको बहुत पसंद है।
गुनगुन थानवी का राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति से रिश्ता बहुत पुराना है। पिछले दो सालों से समिति के कार्यों में मानद् सहयोग दे रही हैं। इनके सभी प्रयास समिति के कार्य को विस्तार देने की दिशा में रहे।❑सं.

लिए खुला था। जो भी आया, उसका प्यार से स्वागत किया गया, खानपान और जरूरत पड़ने पर घर पर उसके विश्राम का इंतजाम करना। बहुत से लोगों का घर में होना, उनकी परेशानी सुनना, जितना हो सके उन परेशानियों का निवारण करना यह हमारे घर में रोज होता रहा। लोग शब्द का उपयोग करना भी मुझे ठीक नहीं लग रहा क्योंकि जो यहां आया, वह तो परिवार का सदस्य ही बनकर रह गया। किसी को भी संदेह या शक की निगाह से देखना उनके जीवन का हिस्सा नहीं था और इसी के चलते कोई भी अनजान नहीं रहा। सभी ने उनका साथ निभाया और जैसा वह मानते थे प्यार का जवाब प्यार ही होता है इसलिए प्रेम बना रहा। वे नॉन जजमेंटल व्यक्ति थे जिसके चलते शायद कई लोगों को एकेडमिक और स्प्रिचुअल मार्ग पर आगे बढ़ने में मदद कर पाये। परन्तु उसमें सिर्फ व्यक्ति का भला नहीं देखते थे, व्यक्ति किस तरह से समाज-उपयोगी काम करेगा, इस पर भी नजर रखते थे। हर इंसान की मदद के पीछे समाज का हित देखते थे।

हाशिए पर खड़े आखिरी व्यक्ति का भला हो सके, इसके लिए उनका जीवन समर्पित था। एक छोटी सी बात है। हमारे घर में सीता नाम की एक महिला कचरा लेने आया करती थी। उसकी बेटी लक्ष्मी मुझसे शायद चार-पांच साल बड़ी रही होगी। लक्ष्मी और पापा का स्नेह भरा रिश्ता था। पिछले साल लक्ष्मी ने मुझसे कहा, दीदी नयी साड़ी दे दो, मैं कुछ कहती इससे पहले लक्ष्मी का जवाब मिला कि पापाजी से ले लूँगी, आप रहने दो। मुझे कुछ क्षण लगे समझने में कि वह मेरे पापा को ही पापा बुला रही थी, उस रोज लक्ष्मी की आंख और मुस्कुराहट में जो आत्म-विश्वास था, वह पापा की ताक़त थी।

जब भी पापा मेरे घर मुंबई रहने आते तो मेरे घर के काम में मदद करने वाली सभी लड़कियां, महिलाएं पापा का ध्यान रखतीं और आज तक भी वे महिलाएं जो काम छोड़ कर जा चुकी हैं, वे फोन करके पापा का हाल जरूर पूछती हैं। यह पापा थे जो घरेलू मजदूरी करने वाले लोगों से रिश्ता बना लेते थे। जयपुर वाले घर में भी यही होता रहा कि जब भी कोई टूट-फूट का काम या लकड़ी का काम कराया गया तो पापा की दोस्ती उन सभी काम करने वाले मेहनतकश लोगों से एक अलग तरह की हुआ करती थी। मैंने इस व्यवहार को देखकर यह समझा कि मेहनतकश व्यक्ति को इज्जत देना, उसे खास महसूस करवाना कितना जरूरी है हमारे समाज में समरसता बनाये रखने के लिए। जितना समाज सेवा में स्नातक की पढ़ाई करने में मैंने नहीं सीखा, उतना मैंने पापा के व्यवहार को देखकर इस बात की अहमियत को समझा कि हमारे देश में कारीगरों और मजदूरों को प्रेम और सम्मान देने से किस तरह के बदलाव की अपेक्षा हम कर सकते हैं। हर वो इंसान जो हाथ का काम करे, वो पापा के लिए सर्वोपरि था। पाउलो फ्रेरे की पैडगॉजी ऑफ़ द ओप्प्रेस्सेड की समझ पापा के
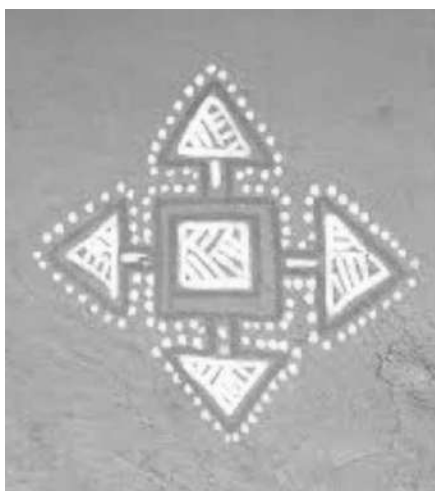
व्यवहार को देख कर और उनका लिखा पढ़ कर बन पायी। फ्रेरे की बहुत जटिल भाषा को अत्यंत सरल ढंग से कह पाना और समझा पाना मैंने उन से सीखा।

गांधी, फ्रेरे, इवान इलीच, ई.एफ शुमाकर और कार्ल मार्क्स तक की समझ हमारे जीवन में रोज़ मर्रा के कामों में निहित रही। स्नातक के समय गोवा फ़ाउंडेशन के निदेशक क्लाड एलवरस ने मुझे साइलेंट स्प्रिंग्स नाम की किताब दी तो उसे पढ़ कर लगा कि ये तो मैं पहले से ही जानती थी। चिड़ियों की चिंता करते भी देखा रोज़ पापा को। कीटनाशकों की मुखालफ़त करते भी देखा। चिड़ियों के लिए पानी भी देखा घर के आंगन में।

हम सबने पापा से ही अपरिग्रह का मूल्य भी सीखा। नौकरी करते हुए, पैसा कमाते हुए, देश-विदेश घूमते हुए कभी नहीं लगा कि सोने-चांदी के जेवर बनवाती रहूं। अपरिग्रह का मूल्य मेरे भीतर इतना गहरा बैठ गया था कि पिछले साल पापा के घर से चोरी होने पर जो मेरे सोना-चांदी के गहने चोरी हो गये, उसकी चोट मुझे नहीं पहुंची, कोई चीस नहीं उठी। मेरे भीतर की मजबूती मुझ में मेरे पापा से आती है जिनके पास जेब में अगर थोड़ा भी रुपया होता तो वह भी किसी को दे देना चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि समाज कल्याण की जरूरत हमेशा बनी रहेगी और वह आज भी कायम है।

तमाम कठिनाइयों के बावजूद जितना काम कर पाये एक पिता होने के नाते वह समंदर की तरह विस्तृत और गहरा है। विरासत में मिला सोशल कैपिटल और एजुकेशनल कैपिटल हमारे जीवन का ध्येय है।

उनकी तबीयत ठीक नहीं थी ये बात मुझसे बेहतर कोई ही जान सकता है पर फिर भी इतने सारे काम, प्रोजेक्ट जिनकी प्लानिंग हम दोनों ने मिल कर की, वो बस अधूरे रह गये हैं। किन-किन जगहों के काम अधूरे रह गये हैं वह मैं यहां गिनवा भी नहीं सकती। साक्षरता का काम अधूरा है। आज भी ये हम समझ रहे थे। पापा के भीतर का उल्लास मुझ में नहीं था, मेरे निजी जीवन की उथल पुथल से वो विचलित रहे, किन्तु उनके जाते ही मुझे सिर्फ़ और सिर्फ़ काम सूझ रहे हैं।

जितना एक पिता को खोया उतना ही एक पूरे पढ़े-लिखे दोस्त को भी खोया। नज़र घुमा के देखने पर समझ आता है कि एक संवाद खत्म हो चुका है जीवन से। पहले अनिल बोर्दिया अंकल का जाना और अब पापा, विकास के मुद्दों की अकादमिक और दार्शनिक नींव को समझ पाने वाले व्यक्ति जैसे विलुप्त हो रहे हैं। इन दो लोगों का जाना समाज के लिए क्षति है। सब कुछ होने के इतर ये दो शिद्दत से मोहब्बत करने वाले पुरुष थे, इंसान कितना भी बिखरा हुआ हो ये दो लोग थाम लेते थे। ऐसा लाड़ लड़ाने वाले अब नहीं मिलेंगे। विरले ही थे।

समाज में प्रेम, समरसता और सह-जीवन बना रहे, इसकी ही कामना है। इस लेख में बहुत कुछ जोड़ देने की संभावना है परंतु अपने जीवन की पूरी

यात्रा यहां लिख सकूं मैं इस स्थिति में नहीं हूं। इतना भर लिख पाना भी मेरे लिए अत्यंत पीड़ादायी प्रक्रिया रही। वह जितने अभिभावक मेरे रहे उतने ही दूसरों के भी।

सुश्री अंजु ढड्ढा मिश्र, श्री भगवान अटलानी, डॉक्टर निधिंन्द्र द्विवेदी, प्रो. मोहन श्रोत्रिय, श्री फरहाद कांट्रेक्टर, पूर्वा कुशवाहा, स्वर्गीय अनिल बोर्दिया, प्रतिभा जैन, अनुपम मिश्र एवं श्री बी.सी.रोकड़िया इन सभी का प्यार और सानिध्य मुझे मां के जाने के बाद पापा के चलते मिला। इन सब ने मुझे छोटे-छोटे तरीकों और जीवन के रिक्त स्थानों में बड़ा किया। ये सब मेरी मजबूती हैं, इनके चलते, जाने अनजाने मैंने बहुत कुछ सीखा, पर फिर भी सब के लाड ने मेरे भीतर बैठे **बचपन** को बचा लिया। ये पापा के रहते ही हो सका। ❑

४०/६७, स्वर्णपथ, मानसरोवर,
जयपुर-३०२०२०
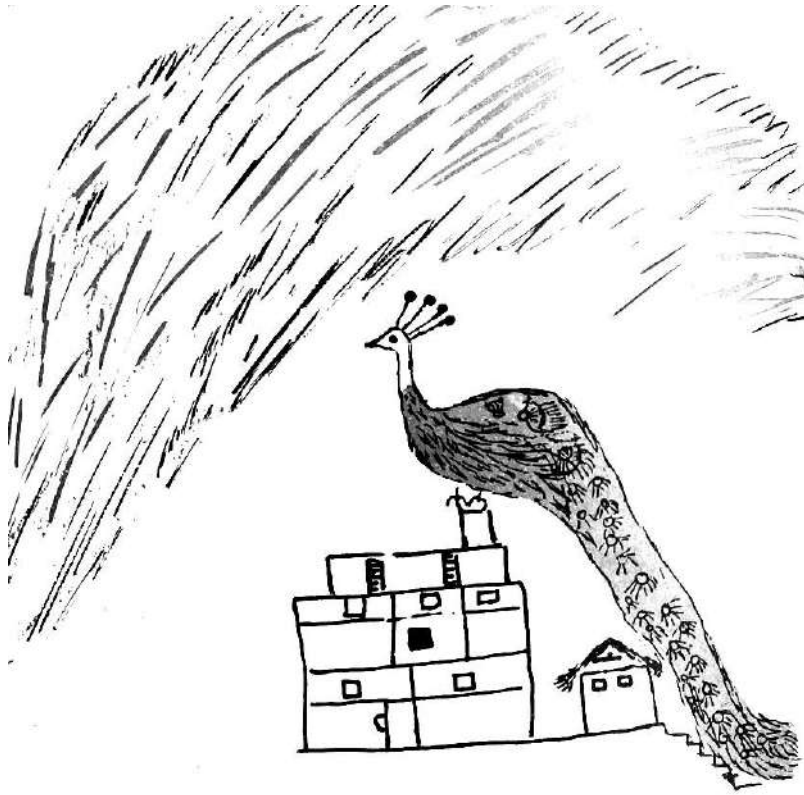
बोला मोर

छत पर चढ़ कर बोला मोर,
बादल क्यूं करते हो शोर।
छत पर चढ़ कर बोला मोर,
नहीं सुहाता कोरा शोर।
छत पर चढ़ कर बोला मोर,
बरसो बादल, छोड़ो शोर

रमेश थानवी

एक यात्रा थानवी सर के साथ

❑

दृश्य – एक

दस बजे का समय है । धूप धीरे-धीरे समिति के आंगन तक पहुंच रही है लेकिन जामुन के पेड़ों तले शीतलता है। यहां दरियां बिछी हैं और उन पर चटाइयां भी। बच्चों के लिए चौकियां, ड्राइंग-शीट, क्रेयोंस, पीने के पानी की बोतलें भी भरी हैं। आसपास तरह-तरह की वनस्पतियां हैं। सब्जियों की बाड़ी भी है। चिड़ियों की चहचहाहट है। दौड़ती - भागती गिलहरियां हैं। मिट्टी है। फूलों से लदी एक बगिया भी है। यहां थानवी जी की आनंदशाला चलती है।

बच्चों की चहल कदमी शुरू हो गयी है। आनंदशाला में स्कूली कुछ भी नहीं है। कोई पंक्तिबद्धता भी नहीं। हर तरफ आनंद और अभय का माहौल है। न तो बस्ता, न किताबें और न ही कोई कक्षा या परीक्षा है। बच्चों को जल्दी उठने की कोई मजबूरी भी नहीं। उन्हें कोई टिफिन भी नहीं लाना होता। तीन घंटे की आनंदशाला में बच्चों के लिए पानी, दूध और नाश्ते की व्यवस्था हर दिन होती है। आनंदशाला खुले आकाश तले पेड़ों की छांव में दरी पर चलती है। यहां बालक आजाद हैं। यहां उन्हें अपना बचपन सुरक्षित लगता है। बच्चे कभी यहां मिट्टी में घर बनाते हैं तो कभी मिट्टी में घास-फूस, हरी पत्तियों, टहनियों, कंकरों और फूलों से बगीचा बना रहे होते हैं। वे कभी मिट्टी की मिठाइयां बनाते हैं तो कभी मिट्टी में लोटपोट होते रहते हैं। वे हर पल कुछ न कुछ रचने में तल्लीन हैं।

यहां सहजीवन है। बच्चे साथ-साथ गाते हैं, खेलते हैं, खाते हैं और प्रकृति का आनंद लेते हैं। थानवी जी को दूर से आनंदशाला में आते देख बच्चे जोर-जोर से जय जगत बोलकर उनका स्वागत कर रहे हैं। बच्चे थानवी जी के साथ जय जगत जय जगत पुकारे जा... गीत सस्वर गा रहे हैं। इसके बाद बाल कविताओं के पाठ का सिलसिला शुरू हो गया है। एक-एक करके निरंजन देव, गुलजार, कृष्ण कुमार, रामनरेश त्रिपाठी, प्रयाग शुक्ल, नटवर पटेल, श्रीप्रसाद, रमेश तैलंग, अनवरे इस्लाम, प्रभात द्वारा रचित बाल कविताओं का पाठ आनंद शाला में चलता रहता है। थानवी जी की लिखी कविताएं देखो बेटी बादल आए, दौड़ा-दौड़ा मन का घोड़ा, भोर भई और गुन गुन गुन तो बालकों की जुबान पर चढ़ गयी हैं। यहां बच्चों के बीच जब शास्त्रीय संगीत का अभ्यास हो रहा होता है तो वे हारमोनियम के साथ वे सुरों से परिचित हो रहे होते हैं। कभी वे निष्णात पेंटर विनय अंबर से स्केच बनाने और रंग भरने की कला को आज़मा रहे होते हैं

❑
मनीष शर्मा

मनीष शर्मा की बालकों के मनोविज्ञान को जानने और उन्हें समझने में इनकी विशेष रूचि है। वे बालकों के साथ नए-नए प्रयोग करने में प्रयासरत रहते हैं। वर्षों से इसी क्षेत्र में स्वाध्याय कर रहे हैं।
प्रस्तुत लेख में मनीष शर्मा ने श्री रमेश थानवी जी के साथ अपनी यात्रा को दस दृश्यों में समेटने का प्रयास किया है। इस लेख से थानवी साहब के व्यक्तित्व के जो आयाम परिलक्षित हो रहे हैं वे हैं - बालमना बाल मनोवैज्ञानिक, अनोखे बालशिक्षाविद, बाल साहित्य रचनाकार, और एक प्रयोगधर्मी शिक्षक जो माता-पिता को भी शिक्षित करने की विवेकशीलता और पारखी दृष्टि रखते थे।
यह लेख बालक, शिक्षक और अभिभावक के संबंध में थानवी जी अंतर्दृष्टि और सौंदर्य को निरपेक्ष भाव से देखने की विनम्र कोशिश है। ❑सं.

तो कभी वे वरिष्ठ रंगकर्मी विलास जानवे से अभिनय करना सीखते हैं तो कभी कठपुतली का खेल खेलने में निमग्न हो जाते हैं।

थानवी जी की आनंदशाला में कभी दोस्ती-मेला लग रहा है, कभी पुस्तक-मेला तो कभी बच्चों के लिए आनंद-गणित की कार्यशाला। हर बच्चे ने अपने हाथों से एक-एक पौधा भी आनंदशाला परिसर में लगाया है। बच्चे अपने-अपने पौधे का ध्यान भी रखते हैं। आनंदशाला में कभी कोई त्यौहार मनता है तो कभी यहां आने वाले किसी बालक के जन्म-दिन का उत्सव। बच्चे कभी शांति का खेल खेलते हैं तो कभी भागमभाग। बच्चे अपने नाश्ते में से बची हुई सामग्री पक्षियों, गिलहरियों और चींटियों को खिलाते हैं। बदले में कभी उनके बीच तोता आकर अपनी लीला दिखाता है, कभी गिलहरी। बच्चे कभी घंटों तक चींटियों के क्रिया-कलापों को देखते रहते हैं। ऐसा लगता है कि यहां बच्चे यह समझने की कोशिश कर रहे होते हैं कि आसपास के पेड़-पौधों से उनका क्या रिश्ता है? चांद-तारों से उनका क्या नाता है? उनके पास जो चंपा-चमेली महक रही है उससे उनके क्या संबंध हैं? आनन्दशाला स्कूल नहीं, प्यार भरा नीड़ है जो बालकों को सीखने और सृजन करने का खुला आकाश देता है। बच्चे माता-पिता के साथ शाम को घर जाते हुए उदास हो जाते हैं। अगले दिन दौड़कर फिर आनंदशाला में पहुंच जाते हैं।

आनंदशाला, रमेश जी का बालकों की शिक्षा के लिए किया गया पहला प्रयोग नहीं है। इससे बहुत पहले भी जयपुर में दिगंतर और बाल भवन को मूर्तरूप में लाने के वे सूत्रधार रहे हैं। इसके अलावा चूरू जिले के राजलदेसर में मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति से भी उनका लंबा जुड़ाव रहा है जिसने गिजुभाई की बाल शिक्षा दर्शन की सत्रह पुस्तकों का प्रकाशन किया था। अब थानवी जी मारिया मोन्तेस्सोरी की पांच पुस्तकों के हिंदी अनुवाद का संपादन कर रहे हैं। उनमें से एक 'विश्व निरक्षरता' पिछले वर्ष ही प्रकाशित हुई है। थानवी जी एक दशक पहले संजीव मिश्र द्वारा लिखी गई पुस्तक 'मारिया मोन्तेस्सोरी : जीवनी और शिक्षा दर्शन' नामक पुस्तक का भी संपादन कर चुके हैं।

दृश्य – दो

थानवी जी के पास बालकों से मिलने और उनकी बातें सुनने को खूब समय होता है। थानवी जी बालकों से भरे-पूरे एक परिवार में बैठे हैं। बच्चों के बारे में बातें हो रही हैं। वे कह रहे हैं कि बालक के पास बड़ों को सिखाने के लिए निर्मलता है, निश्छलता है, सलोनापन है, भोलापन है, अनंत प्रेम और स्नेह है। बालक में जाति, वर्ण या रंग से परे सभी के प्रति सहज आत्मीयता होती है। कौतुहल और जिज्ञासा तो उसमें कूट-कूट कर भरे होते हैं। बालक स्वभावतः सत्यनिष्ठ और निर्भय होता है। लेकिन आज हमारी शालाएं और मां-बाप ही बालकों के दुश्मन हो गये हैं। नाना-नानी आज कहानी-विहीन हो गये हैं। अब बच्चों को कोई लोरियां नहीं सुनाता। मदालसा जैसी लोरियां सुनाने वाली मांए भी अब कहीं खो गई हैं।

इसी परिवार की पांच-छः साल की एक नन्ही बच्ची पहली बार थानवी जी से मिली है। ऐसा लग रहा है कि थानवी
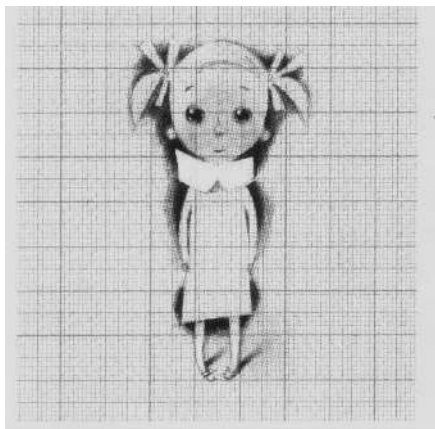
जी उस बच्ची पर अपना सब कुछ उंडेल रहे हैं। प्रेम, आत्मीयता, प्रोत्साहन सभी कुछ। कुछ देर की बात में ही वह बच्ची एकदम सहज हो गयी है। अब वह अपने आपको खोल देने को आतुर है। बहुत सारी बातें उन दोनों के बीच हो रही है। बातचीत का समापन थानवी जी द्वारा उन बच्चों को चिट्ठी लिखने के वादे से होता है।

दो-तीन दिन बाद ही थानवी जी को कॉपी के पन्नों से अपने हाथ से बनाया एक लिफाफा मिलता है। लिफाफा खोलने पर उसमें एक प्यार भरी चिट्ठी थानवी अंकल के नाम है जो उस पांच साल की बच्ची ने लिखी है। चिट्ठी के साथ एक कागज पर बच्ची ने अपने थानवी अंकल का स्केच भी बना कर भेजा है। चिट्ठी से लगता है कि बच्ची ने भी अपने स्नेह को उड़ेलने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। सैकड़ों बार थानवी सर को बच्चों के थानवी अंकल बनते हुए देखना मन को भिगो देने वाला अनुभव होता है। और हां, थानवी जी द्वारा बच्चों को किताबें भेंट करने का सिलसिला दशकों से बदस्तूर जारी है। सैकड़ों नहीं, हजारों किताबें।

दृश्य –तीन

कुछ लोग थानवी जी के साथ हैं। बातों-बातों में थानवी जी की पीड़ा झलक रही है। उनकी चिंता है कि कैसे हमारे बालक अपनी-अपनी प्रकृति के अनुरूप पुष्पित -पल्लवित हो पाएं ? उनकी चिंता है कि हमारी शालाएं बालकोन्मुखी नहीं हैं। पढ़ाई का दबाव, बाजार के दख़ल और आकर्षण के भंवर में घिरे बच्चे एकाकी हो गये हैं। बालकों के पास अभिव्यक्ति का अधिकार नहीं है। उनकी भाषा छीन ली गयी है। शिक्षा का सारा ज़ोर बालक के कोमल मस्तिष्क में अनावश्यक और अप्रासंगिक जानकारियों का जखीरा ठूंसना हो गया है। शिक्षा में वही बालक अव्वल हैं जो कम से कम समय में अपनी से स्मृति में से तथ्य निकाल कर प्रस्तुत कर सकते हैं। शिक्षा प्रक्रिया का जीवन और समाज से कोई संबंध नहीं है। शिक्षकों को इतना अवकाश भी नहीं है कि वे बालकों की जिज्ञासा को जानकर उसे शांत करें। थानवीजी कह रहे हैं कि उस शिक्षा - तंत्र की क्या कहें जिसे बालकों की मीठी बातें शोर लगती हैं? जो हमेशा बालकों को आदेश देता है... खामोश रहो, चुप हो जाओ और शोर मत करो। ये ऐसे वाक्य हैं जो किसी भी कक्षा में सबसे ज्यादा बोले जाते हैं। हर बार ऐसा कहकर हमारे शिक्षक शिक्षा की प्रश्नोन्मुखी परंपरा पर चोट करते हैं। गूंगी सभ्यता की रचना करते हैं। आज सत्यान्वेषी नचिकेता की याद किसी को नहीं आती। तभी कोई शिक्षा तंत्र यह जानने में रुचि नहीं रखता कि बालक ने एक सत्र में कितना सच बोलना सीखा है? उसने कहां तक अपनी निर्मलता, निश्छलता और सरलता को बचाये रखा है? उसके मन में कितनी करुणा जागी है?

दृश्य – चार

एक दंपती थानवी जी से मिलने आये हुए हैं। उनके बच्चों के बारे में बातें हो रही हैं। थानवी जी कह रहे हैं कि अज्ञानवश माता-पिता अपने शिशुओं, बालकों और किशोरों के साथ जो दुर्व्यवहार किया जाता है, उसका घातक असर उनके संपूर्ण जीवन पर पड़ता है। आज माता-पिताओं को

कोई यह सिखाने वाला नहीं है कि घर कैसे घर बना रह सकता है? सच्चा दांपत्य जीवन कैसा होता है? पति-पत्नी होने का अर्थ क्या है? मां-बाप बनने के मायने क्या हैं? सभी लोग सामान इकट्ठा करने में लगे हैं। सच्चे अभिभावक बनने की सीख देने वाले लोग आज ढूंढे नहीं मिलते। माता-पिताओं को अपने सहजीवन में अनंत धीरज, अनंत सहिष्णुता और प्रगाढ़ प्रेम चाहिए, तभी वे अपने बालकों को सींच सकते हैं।

रमेश जी अपनी बात-चीत में दादा धर्माधिकारी की पुस्तक 'स्त्री-पुरुष सहजीवन' पर चर्चा करना कभी नहीं भूलते हैं। अन्य किताबें जिनका जिक्र बार-बार रमेशजी माता-पिताओं से करते हैं और उसका सार साझा करते हैं, वे हैं-सुखोम्लिन्सकी द्वारा लिखित बाल हृदय की गहराइयां, अन्तोन मेकरेंको की एक पुस्तक माता-पिता के लिये, गिजुभाई द्वारा लिखी गयी सत्रह किताबें जिनमें प्रमुख हैं- माता-पिता की माथापच्ची, कठिन है माता-पिता बनना, दिवास्वपन, माता-पिता की अपेक्षाएं और प्रश्न। महात्मा भगवानदीन की माता-पिताओं से, बालक सीखता कैसे है?, बालक अपनी प्रयोगशाला में, तेत्सुको कुरोयानागी की तोत्तोचान, सेंट एक्सूपेरी की लिटिल प्रिंस, ए एस नील की समरहिल, पाउलो फ्रेरे की डेंजर स्कूल आदि।

गिजुभाई तथा महात्मा भगवानदीन की किताबें, तोत्तोचान व लिटिल प्रिंस तो सैकड़ों घरों तक पहुंची हैं जहां परिवार में छोटे बच्चे हैं। यह सब उनके अपने खर्च पर। उनकी सबसे बड़ी पीड़ा है हमारे घरों में पुस्तकों का नहीं होना। वे कह रहे हैं कि हम अपनी रसोई के सामान की तरह हर महीने किताबें क्यों नहीं खरीदते हैं? हमारे घर में किताबें रखने की कोई स्थायी जगह क्यों नहीं होती है? घर में किताबें नहीं होंगी तो हमारे बालकों को विरासत में क्या मिलेगा? किताबें बच्चों की आंखें हो सकती हैं इस दुनिया को अपनी नज़र से देखने के लिए।

दृश्य – पांच

थानवी जी अपने घर से अभी-अभी समिति कार्यालय पहुंचे हैं। उनके साथ पुरानी किताबों और पत्रिकाओं के तीन-चार बंडल हैं। इनमें शिक्षण पत्रिका के अंक भी हैं जो वर्ष १९४० और १९५० के दशक में प्रकाशित हुये हैं। ये सभी अंक थानवी जी के पिता द्वारा संग्रहित किये गये थे। यह पत्रिका बालकों के शिक्षण और परवरिश को समर्पित थी। इसमें मां-बाप एवं शिक्षकों को संबोधित किया गया था। इस पत्रिका का संपादन गिजुभाई द्वारा भी किया गया था। थानवी सर इन सभी पत्रिकाओं को अपने बचपन में ही पढ़ चुके थे।

आते ही उन्होंने पुस्तकों एवं शिक्षण पत्रिका के वे बंडल एक साथी के हवाले कर दिये। कहा-मैं आपके हाथ में एक खजाना दे रहा हूं आप इन्हें पढ़िए, समझिए और इनको सुरक्षित रखने का उपाय कीजिए। महीनों तक यह उपक्रम चला। हर लेख और पुस्तक पर बात हुई। कभी समिति में, कभी उनके घर पर, कभी भोजन करते समय, कभी टहलते हुए, कभी माता-पिताओं एवं शिक्षकों से मिलने के बाद, कभी यात्रा

के समय तो कभी फोन पर। जब भी कोई नयी किताब या लेख बाल शिक्षा पर मिलता तो वे उसकी एक प्रति अवश्य ही उस साथी को हवाले कर देते हैं। बंडलों में जो पत्रिकाएं एवं पुस्तकें थीं, उनके माध्यम से रमेशजी के साथी को मारिया मोन्तेस्सोरी, महात्मा भगवानदीन, गिजुभाई, ताराबेन मोडक, जुगत राम भाई, बंशीधर जी, काशीनाथजी त्रिवेदी, प्रो. भामरा, बबल भाई मेहता, मनुभाई पंचोली, काका कालेलकर, अनुताइ बाघ, रविशंकर महाराज, बंधु जी, रवींद्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी, सी राजगोपालाचारी, विनोबा, विष्णु चिंचालकर, डॉ. जाकिर हुसैन, डेविड हॉर्सब्रा, जॉन होल्ट, सुखोम्लिन्स्की, मैंकेरेकों, पाओलो फ्रेरे, कृष्ण कुमार, अरविन्द गुप्ता, लेव टोलस्टॉय जैसे शिक्षा मनीषियों के शैक्षणिक मनोविज्ञान को गहराई से समझने का अवसर मिला।

- बालक की वृत्ति और प्रवृत्ति क्या होती है?
- बालक की विचारशीलता कैसे प्रबल हो?
- बालक का बचपन कैसे बनाये रखा जा सकता है?
- बालक से हमारा व्यवहार कैसा हो?
- शिक्षा के मायने क्या हैं?
- बालक सीखता कैसे हैं ?
- बालकों के लिए शिक्षण सामग्री कैसी हो जो न केवल उनके शारीरिक और मानसिक विकास में सहायक हो अपितु उन्हें एक संवेदनशील इंसान बना सके ।
- बालक कैसे उत्साह और लगन से सीख सकते हैं?

जैसे अनेक सवालों के उत्तर मिले। इस पूरे प्रकरण में रमेशजी के व्यवहार को देखकर गीता का एक श्लोक मन में आता है। वह है–

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु
१८.६३

भावार्थ : इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुमसे कह दिया। अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञान को पूर्णतया भलीभाँति विचार कर, जैसे चाहता है वैसे ही कर। १८.६३।।

मुझे हमेशा ऐसा लगता रहा है कि थानवी जी हमेशा ही अपने ज्ञान से लोगों के मन को रोशन करते रहे हैं। लेकिन उन्होंने कभी भी किसी विचारधारा विशेष से बांधने का प्रयास नहीं किया। अंतिम निर्णय वे व्यक्ति के विवेक पर ही छोड़ देते हैं।

दृश्य – छह

आज थानवी जी एक स्कूल में हैं और शिक्षकों के एक समूह के साथ बालकों की शिक्षा के बारे में चर्चा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि केवल एस टी सी या बी एड करने और रीट की परीक्षा पास कर लेने मात्र से कोई अच्छा अध्यापक नहीं बन सकता। आज शिक्षा का मतलब परीक्षा पास करना और डिग्रियां हासिल करना ही रह गया है। शिक्षा क्या है, इसे समझने की ज़रूरत है। शिक्षा यानी बालक के जन्म के साथ जो प्रतिभा उसे मिली होती है, उसे विकसित करना। शिक्षा जगाने का काम करती है, सवाल करना सिखाती है, जीवन के सच को खोजना और हमेशा कुछ न कुछ रचते रहना सिखाती है। लेकिन इस आपाधापी में क्या शिक्षक को इतनी

फुर्सत है कि शाला में आने वाले हर बालक को पढ़ पाये? उस बालक को पढ़-पढ़ कर यह पहचान पाये कि वास्तव में वह क्या है? उसकी स्वाभाविक प्रतिभा क्या है, कौन सी शक्तियां उसमें अभी सुषुप्त हैं? अगर हम अपने बालक को तराश कर 'कुछ' बनाने पर आमादा रहते हैं तो वह बालक कभी भी बेहतर इंसान नहीं बन पाएगा।

बालक बीज है जिसमें पेड़ का, पत्तों का, फूलों का, फलों के रूप का, रस का, स्वाद का और गुणों का सारा सार प्रकृति ने कूट-कूट कर भर रखा है। उस बीज को उपयुक्त वातावरण चाहिए, खाद चाहिए, उपजाऊ मिट्टी, पानी और प्यार चाहिए । इस एक दाने को सींचने से पूरा बगीचा तैयार हो जाएगा। कितने शिक्षक बाल - वत्सल हैं जो बालकों को हुलराकर और दुलरा कर उनके मन में प्रवेश कर पाने की क्षमता रखते हैं, जो बालकों से पूछते हैं कि वे क्या पढ़ना चाहते हैं? क्या सीखना चाहते हैं? क्या खेलना चाहते हैं? क्या करना चाहते हैं? कैसी किताबें पढ़ना चाहते हैं? अपने सहपाठियों से क्या बात करना चाहते हैं? कहां घूमना चाहते हैं ? कौन सी तितली के पीछे दौड़ना चाहते हैं?

आज शिक्षा में कदम-कदम पर प्रतियोगिता है। एक श्रेष्ठ और बाकी कमतर हैं, ऐसा भाव जगाते हुए हमें कोई संकोच नहीं होता। अहंकार वश दूसरों की उपेक्षा आज हमारा युगधर्म हो गया है। ऐसे में से शिक्षा इंसान को इंसान से जोड़ने वाली हो ही नहीं सकती।

बालकों से हमें सीखना है, उनके साथ से हमें अपने आप को संपन्न बनाना है। बालकों को पढ़ाने से पहले हम को सीखने वाला बनना है। स्वाध्यायी बनना है। बाल - वत्सल बनना है । उनकी शिक्षा को बालकोन्मुखी बनाना है। आज शिक्षा हमें श्रम से दूर रखती है। हम हर छोटे से छोटे काम के लिए भी किसी न किसी मशीन की तलाश में रहते हैं। देश के लिए सर देने वाले सरदारों का जमाना अब लद गया है। अब सर - सर कहने वाले गुलाम लोग देश की शान हो गये हैं।

शिक्षकों को पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं रहकर किताबों से संस्कारित होने की जरूरत है। और थानवी साहब शिक्षकों के सामने एक के बाद एक भारतीय और विदेशी शिक्षा मनीषियों के दर्शन से पर्दा उठाते जाते हैं। घंटों तक यह सिलसिला चलता है गिजुभाई, ताराबेन, गांधी और विनोबा से लेकर मेकारेंको, सुखोम्लिन्सकी, पियाजे, जॉन हॉल्ट, पाउलो फ्रेरे, इवान इलिच, डेविड हॉर्सब्रो, माता मोन्तेस्सोरी उनकी चर्चा में प्रकट होकर शिक्षकों के समक्ष अपने आप को उद्घाटित करते जाते हैं। किसी शिक्षक ने यदि गिजुभाई की दिवास्वप्न नहीं पढ़ी है तो यह बात रमेशजी को असहज करने वाली होती है।

दृश्य – सात

सवा तीन साल की एक नन्ही बच्ची जो तीन-चार बार ही थानवी जी से मिली थी। थानवी जी ने उसके लिए कुछ पुस्तकें भिजवायी। उसने कई बार उन पुस्तकों का अपने पिता के साथ बैठकर आनंद लिया। उसके बाद एक सिलसिला शुरू हुआ उस बच्ची के लिए किताबें आने का। हर बार उसके पिता बोलते कि ये किताबें थानवी सर ने

आपके लिए भेजी हैं। किताबें लेते समय बच्ची कहती कि सर को थैंक यू बोल देना। बच्ची को पता चला कि सर नहीं रहे। अभी कुछ दिन पहले नन्ही बच्ची और उसके पिता के बीच थानवी जी के बारे में हुआ संवाद...

पापा, आपके सर कहां गये?
वे भगवान के पास चले गये।
वे भगवान के पास क्यों चले गये?
भगवान ने उनको तारा बना दिया।
भगवान ने उनको तारा क्यों बना दिया?
ताकि उनको बहुत सारे बच्चे देख सकें।
मुझे वो तारा दिखाओ, मुझे उनकी शक्ल देखनी है।
देखो वो चमकता हुआ तारा...

लेकिन उस तारे में तो कोई शक्ल नहीं दिख रही है, क्या वे पीठ फेर कर बैठे हैं ? वे पीठ फेर कर क्यों बैठे हैं? नहीं, वे पीठ फेर कर नहीं बैठे। वह तारा हमसे बहुत दूर है, इसलिए ऐसा लग रहा है।

और बच्ची देर तक तारे को एकटक देखती रही...

दृश्य – आठ

नन्ही बच्ची ने अपने पिता से कहा कि अब आपके थानवी सर तो ऑफिस में मिलेंगे नहीं। पिता ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। कोई जवाब शायद उन्हें सूझा भी नहीं।

दृश्य – नौ

देर रात सोने से पहले आनंदशाला के एक पांच वर्षीय बालक ने अपनी मां से कहा कि मम्मा, अब थानवी सर का चश्मा किसके पास रहेगा?

मां इस प्रश्न का क्या उत्तर दे? काश! थानवी सर का चश्मा हम लगा लें ताकि हम भी बालकों की परवरिश और शिक्षण उनकी दृष्टि से कर पाएं।

दृश्य – दस

रात में एक छोटी सी बच्ची को तारा दिखाते हुए उसके पिता ने कहा, देखो वो रहे रमेश थानवी अंकल। बच्ची पुलक कर बोली, नमस्ते रमेश थानवी अंकल!

आज थानवी जी हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उन्हें कहीं भी और कभी भी महसूस कर सकते हैं किसी बालक को अपने अंक में भरकर...। ❑

५७, महावीर नगर, सांघी फॉर्म,
टोंक रोड, जयपुर–१८
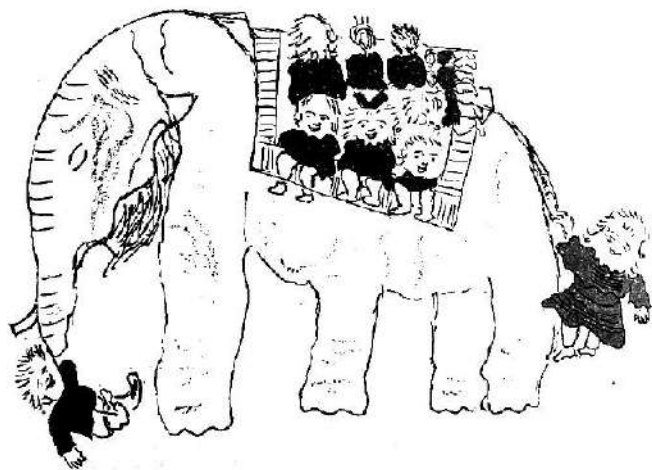
हाथी पर बैठे दस बच्चे

हाथी पर बैठे दस बच्चे
भर गया हौदा बैठे बच्चे
हाथी नीचे, ऊपर बच्चे
हाथी बड़ा या बड़े हैं बच्चे ?
बोलो बच्चों सच्चे सच्चे।

रमेश थानवी

स्मृतियां और उपलब्धियां

❑

❑
डॉ. कल्पना दीक्षित

डॉ. कल्पना दीक्षित शिक्षा-चिंतक एवं विचारक हैं। कलकत्ता में रहती हैं। रमेश थानवी से इनका सतत संवाद रहा है। शिक्षा पर कितने ही सवाल, अमन और शांति और सह-अस्तित्व पर लम्बी चर्चाएं इनके साथ होती रही हैं।
अनौपचारिका में प्रकाशित डॉ. कल्पना दीक्षित का 'शिक्षा व्यवस्था : अतीत और वर्तमान'-आलेख एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। थानवी जी को याद करते हुए वे महसूस कर रही है कि वे अनंत में विलीन होकर आत्मीय ऊर्जा के अक्षय स्रोत बन गये हैं। उनकी याद में प्रस्तुत है यह लेख। ❑ **सं.**

रमेश थानवी जी मेरे मेंटर, अभिभावक, गुरु हैं। २०१७ में फेसबुक के माध्यम से हम जुड़े और अप्रैल २०१८ में मेरे लिए उन्होंने अपनी पुस्तक 'शिक्षा का सच' भेजी, लोक पर आधारित एक आलेख की छायाप्रति और साथ में दो पृष्ठ की चिट्ठी भी। तब तक थानवी जी ने मुझे विश्वविद्यालय में नियुक्त समझा था लेकिन जब मैंने स्पष्ट किया कि मैं गृहिणी हूँ, घर और बच्चे सम्भालती हूँ, तब भी उनके व्यवहार में किञ्चित परिवर्तन न आया। वही अपनापन, वही सम्मान। हर महीने समिति की पत्रिका अनौपचारिका मेरे घर आने लगी। शिक्षा सम्बन्धी बारीकियां स्पष्ट होने लगीं। थानवी जी ने शिक्षा सम्बन्धी कुछ प्रश्नों के माध्यम से मुझे उत्प्रेरित किया और इसी प्रेरणा में शिक्षा व्यवस्था : अतीत और वर्तमान विषय पर आलेख मेरे द्वारा लिखा गया। आलेख अनौपचारिका में प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशन के बाद मेरे पास पाठकों द्वारा पोस्टकार्ड पर लिखी चिट्ठियां आयीं और फोन कॉल भी आए। दो दिव्यांग बच्चों में उलझी हुई, परिस्थितियों से जूझने वाली गृहिणी को आकाश मिला। थानवी जी से मेरी जब-तब घण्टों बातें होतीं। विविध विषयों पर होने वाली बातें कभी बहनों और कभी बेटियों से होकर गुजरतीं। कभी अतीत की पड़ताल होती तो कभी वर्तमान का मोद बरसता। मुझे सपरिवार जयपुर आने का निमंत्रण हमेशा खुला रहा। घर के मौलश्री से लेकर खाना बनाने वाली महिला तक की बातें हम करते। जिन्हें अपनापन बोने-सींचने आता है, उनके पास अथाह बातें होती हैं। किसी सम्मेलन, किसी आयोजन के विस्तृत ब्यौरे पर आधारित बातों में अनोखी खुशी होती थी। शिक्षा सम्बन्धी बातों में ये होता कि शिक्षा जब सुविधा देती है तो बीमारियां बढ़ती क्यों जा रहीं? शिक्षा यदि मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती होती तो वर्तमान में भीड़ के बीच अकेलेपन में जूझ ने वाली त्रासदी न रहती। शिक्षा जब निर्भय बनाती है तो हथियारों की पैदावार क्यों? शिक्षा जब सुरक्षा देती है तब नेताओं को इतनी कड़ी सुरक्षा की आवश्यकता क्यों रहती है? तमाम सुरक्षा के बीच इंदिरा गांधी छलनी हो गयीं। परमाणु हथियार शांति के लिए नहीं, युद्ध को उकसाने का लिए हैं। ऐसे में मानव-समष्टि का शांतिपूर्ण सहअस्तित्व कैसे निर्मित हो सकता है भला। थानवी जी प्रयोगशाला थे। उन्होंने मुझमें एक दृष्टिकोण विकसित किया जिससे शिक्षा की वास्तविकता

स्पष्ट हुई। शिक्षण-संस्थान तक संकुचित, प्रमाणपत्र तक विस्तृत और अर्थाजन तक लक्ष्य रखने वाली व्यवस्था भला शिक्षा कैसे हो सकती है। शिक्षा औपचारिक नहीं अपितु सहज और मुक्त होनी चाहिए, जिससे शिक्षित व्यक्तित्व में जीवन-जटिलताएं प्रभावी न बनने पाएं। वे स्वयं लोगों से जुड़ते और अपनों से औरों को जोड़ते।

अपनी बेटियों के बारे में बात करते हुए हुए वे गर्व से भर जाते। वे स्वयं श्रेय लेने की बीमारी से मुक्त रहते। हमने एक बार पत्रिका के संपादकीय की प्रशंसा कर दी तो अगले दिन सम्पादिका महोदया से मेरी बात करवायी। स्वयं को कण की तरह रखकर हर किसी को भरपूर महत्त्व देते। मुझसे कहते आप कुछ भी लिखें, हम आलेख मान लेंगे। थानवी जी को याद करते हुए महसूस हो रहा है कि विलीन होकर आत्मीय ऊर्जा के अक्षय स्रोत बन जाते हैं।❑

डी ब्लॉक, डी-१, टीचर्स क्वार्ट्स,
जाधवपुर यूनिवर्सिटी,
कोलकात्ता-७०००३२ (पश्चिमी बंगाल)

❑
मोहन मंगलम

प्रियजनों को पत्र लिखने की चाहत तथा बीबीसी लंदन से प्रसारित कार्यक्रमों और अखबारों में छपे अग्रलेखों व समाचारों पर टिप्पणी करने की आदत ने पत्रकारिता की दुनिया में आने की राह दिखायी। करीब ढाई दशक तक दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका तथा अमर उजाला के सम्पादकीय विभाग में विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करने के बाद अब नैतिक चेतना तथा मानवीय मूल्यों की संवाहक पत्रिका 'अणुव्रत' में सह सम्पादक पद पर कार्यरत हैं। बच्चों के प्रति दोस्ताना व्यवहार तथा पुस्तकें पढ़ना मन को भाता है। इस आलेख में वे स्नेह के समंदर अपने थानवी अंकल को याद कर रहे हैं।❑

जथा जोग मिले सबहि कृपाला

❑

रामचरितमानस का एक प्रसंग है। १४ साल के वनवास के बाद प्रभु श्रीराम अयोध्या लौटे हैं। नगर के सभी लोग उनसे मिलने को बेताब हैं। घट-घट के वासी राम इस उत्कट प्रेम को समझ जाते हैं और सभी अयोध्या वासियों को ऐसा एहसास होता है कि राम व्यक्तिशः उनसे मिल रहे हों। तुलसी बाबा ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है -

अमित रूप प्रकटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला।।

यह प्रसंग मुझे अतिशयोक्ति-सा प्रतीत होता था, मगर कुछ ऐसा हुआ कि मैं इस पर यकीन करने लगा।

जी हां, वर्ष २००९-१० की बात है, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के कार्यालय में श्री रमेश थानवी जी के दर्शनों का सौभाग्य मिला। इस संक्षिप्त मुलाकात में जान-पहचान की हुई शुरुआत उनके स्नेहिल व्यवहार के कारण जल्द ही अपनापन में तब्दील हो गयी। थानवी साहबथानवी अंकल हो गये। फिर तो अवकाश के दिन अक्सर ही पत्नी और बेटे के साथ उनसे मिलना हमारे कार्यक्रमों में शुमार हो गया। राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति की मासिक पत्रिका 'अनौपचारिका' के इस संस्थापक सम्पादक के व्यवहार में औपचारिकता का तो नामो-निशान ही नहीं था। वे स्नेह का ऐसे समंदर थे जिसमें हर किसी के लिए मीठा ही मीठा जल था।

इसी बीच नियति का चक्र कुछ ऐसा घूमा कि वर्ष २०११ में मैं लखनऊ चला गया। पत्नी और बेटा जयपुर में ही थे, इसलिए महीने-दो महीने में जयपुर का चक्कर लग ही जाता था। इस दौरान प्रयास करता कि थानवी अंकल से मिलकर उनका आशीर्वाद जरूर लूँ। फोन पर तो अक्सर बात होती ही थी। उनसे मिलकर या बात करके ऐसा लगता जैसे सारी समस्याओं का समाधान हो गया हो, डिस्चार्ज हुई बैटरी एकदम से चार्ज हो गयी हो। और जहां तक मैं महसूस कर पाया, ऐसा ही एहसास हर उस व्यक्ति को हुआ करता था, जो थानवी अंकल के संपर्क में आया।

थानवी अंकल हर समस्या को विस्तृत फलक पर देखते थे और उसका समाधान इस तरह निकालने का प्रयास करते थे कि अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो सकें। तभी तो कोरोना

की वैश्विक महामारी के दौरान लगाये लगे लॉकडाउन के दौरान सैकड़ों महिलाओं को रोजी-रोटी उपलब्ध कराने का भगीरथ प्रयास शुरू कर दिया। ताना-बाना अभियान के तहत जरूरतमंद महिलाओं को कपड़े की कतरनें दिलाने की व्यवस्था की जिससे मास्क बनाकर वे अपना गुजारा कर सकें। यही नहीं, थानवी अंकल ने आम जन के अच्छे स्वास्थ्य की दृष्टि से राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति सभागार में स्वास्थ्य को लेकर विशेषज्ञों के व्याख्यान आयोजित किये। समिति परिसर में आरोग्य साधनायन की शुरुआत की। भाँति-भाँति के औषधीय पौधों से समिति के गुलशन को गुलजार कर दिया।

बढ़ती उम्र और सेहत से जुड़ी परेशानियों को उन्होंने कभी खुद पर हावी नहीं होने दिया। मानवता के कल्याण के लिए समर्पित ऐसी ही विभूतियों के लिए राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा है-

बड़ा व आदमी जो जिन्दगी भर काम करता है,
बड़ी वह रूह जो रोये बिना तन से निकलती है।

थानवी अंकल को कोटि-कोटि नमन।❑

१०२, पत्रकार कॉलोनी,
मानसरोवर,
जयपुर-३०२०२०

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट
राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज

- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें या 9571237334 पर WhatsApp करें

अलविदा, रमेश थानवी

❑

पता नहीं राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति की चर्चित और सम्मानित पत्रिका का नाम 'अनौपचारिका' क्या सोच कर रखा गया था, पर श्री रमेश थानवी को जानने-समझने वाले हर व्यक्ति को पता था कि वे औपचारिकता में विश्वास नहीं करते थे। पूरे संस्थान को उन्होंने 'सबका संस्थान' का रूप दे रखा था। नयी-नयी योजनाओं और उनके क्रियान्वयन में योगदान के लिए वे हर उस व्यक्ति को जोड़ने के लिए लालायित रहते थे, जिसके भीतर कहीं कोई आग थी समाज को बेहतर बनाने के लिए। 'अनौपचारिका' के नवीनतम अंक में उन्होंने 'सबका अभिनंदन, आभार, आदाब' व्यक्त करते हुए 'समिति' के काम में जुड़ने वाले सब सहयोगियों का स्वागत किया था। समिति के नये कार्यक्रम 'मिशन ताना-बाना' के अंतर्गत हर घर को पोथी-घर बनाने या बच्चों को नये ढंग से पढ़ाने के लिए 'आनंदशाला' का उनका आयोजन शिक्षा-क्षेत्र की जिज्ञासा का विषय बनता जा रहा था... और जिज्ञासाएं जगाने और विश्वास दिलाने वाला अद्‌भुत व्यक्तित्व-अचानक हमारे बीच में से उठ कर चला गया। रमेश थानवी बीमार तो हुए थे, पर वह 'पुरानी बात' हो गयी थी। वे तो नये जोश और नयी ऊर्जा के साथ लगातार बड़े होते कारवां के काम में लगे हुए थे। इस तरह उनके जाने से एक श्रेष्ठ विचारक, लेखक-संपादक को जैसे काल ने हमसे छीन लिया।

वे किसी और ही मिट्टी के बने हुए थे। संयत और सधे हुए शब्दों में अपनी बात कहना और मनवाना उन्हें खूब आता था। समय और समाज से जुड़े महत्व के विषयों पर उनकी मौलिक टिप्पणियां बहुत कुछ सोचने-समझने के लिए विवश कर देने वाली होती थीं, 'नवनीत' के हितैषी-सलाहकार थे। हमेशा किसी भी सहयोग के लिए तत्पर। अभी कुछ ही दिन पहले तो पत्रिका के 'बंटवारे के दर्द' वाले नववर्षांक को लेकर उनसे लम्बी वार्ता हुई थी। कितना उत्साह था उनमें इस अंक को लेकर... अब इस तरह की वार्ता कौन करेगा? रमेश जी का जाना हिन्दी पत्रकारिता की बहुत बड़ी क्षति है। आपको अभी नहीं जाना था रमेश जी... अलविदा ! ❑

भवन्स नवनीत, मार्च २०२२
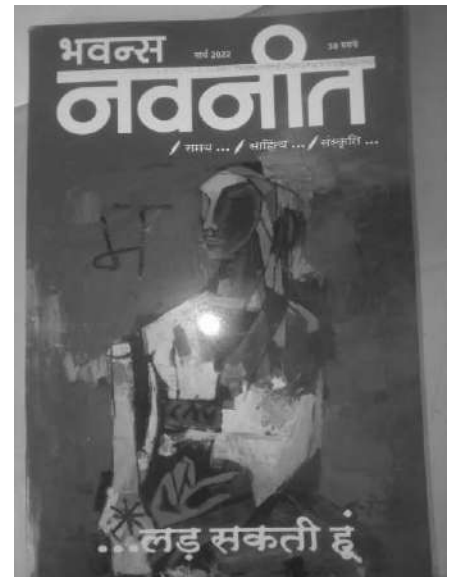
श्री रमेश थानवी की सृजन एवं चिंतन यात्रा
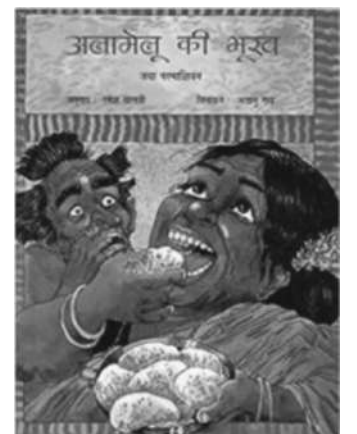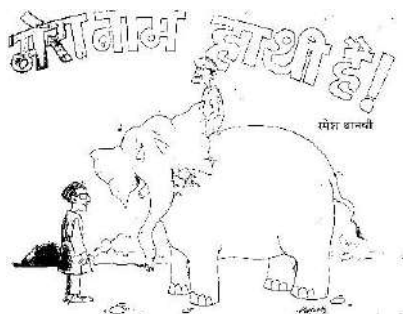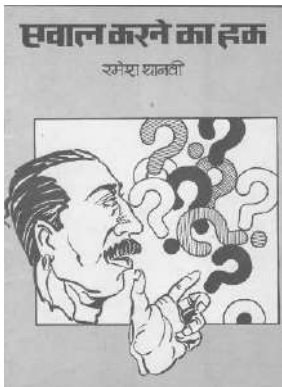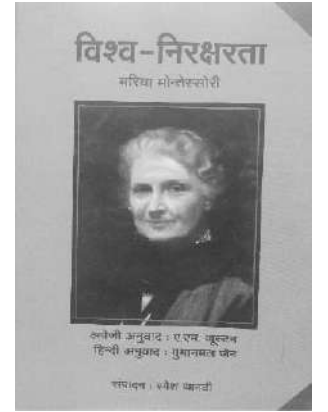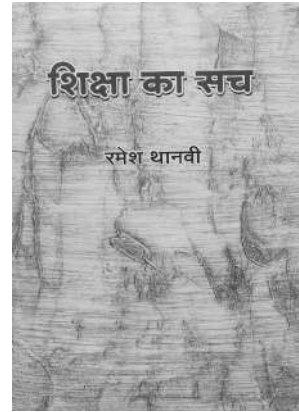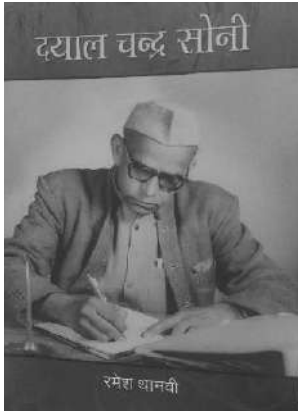
श्री रमेश थानवी की जीवन–यात्रा की कुछ स्मृतियां
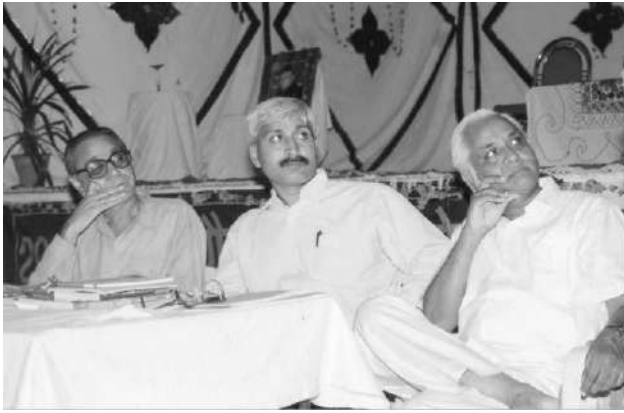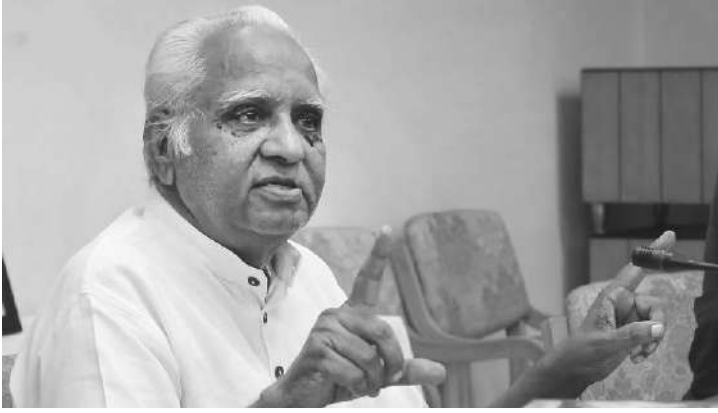
पारिवारिक स्मृतियां
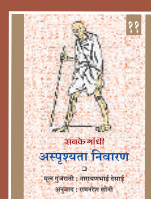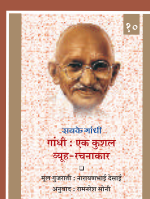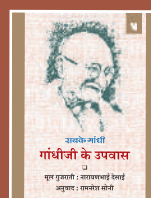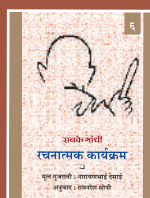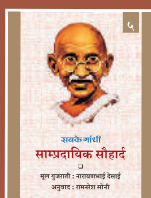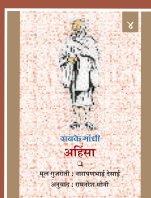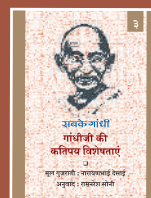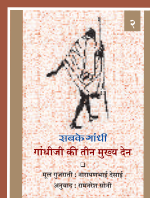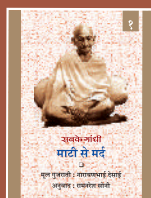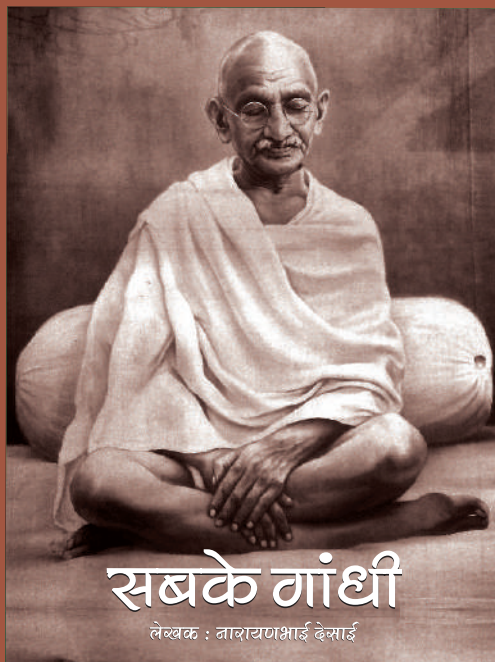
RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X

सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C.Code : BARB0EXTNEH
(fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct,No. 9815010002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

सबके गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004
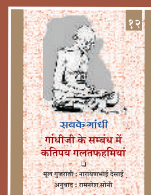
१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रूपये ५०० मात्र/– डाक खर्च अलग से देय होगा।